* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

अर्जुनको भगवान् शिवकी महिमा बताते व्यासजी

परास्बा भगवती श्रीपार्वतीकी शिवाराधना

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा।
दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४ | गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, जुलाई २०२० ई० | संख्या ७

पूर्ण संख्या ११२४

पार्वतीजीकी शिवाराधना

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए॥
कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥

भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥

[श्रीरामचरितमानस]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, जुलाई २०२० ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- पार्वतीजीकी शिवाराधना	३
२- कल्याण	५
३- शिव-महिमा **[आवरणचित्र-परिचय]**	६
४- यज्ञोपवीत (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७
५- मान और विवेक (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीदयानन्द गिरिजी महाराज)	८
६- संसारकी सुखमयता (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२
७- हनुमान्‌जीद्वारा रावणकी चिकित्सा करनेका यत्न (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)	१३
८- 'बार-बार नहिं पाइये, मनुष-जनमकी मौज' **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१६
९- गोस्वामी तुलसीदासजीकी नाम-निष्ठा (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय)	१८
१०- राम और नाम	२०
११- श्रावणमास और उसके व्रत-पर्वोत्सव	२१
१२- राग-द्वेष (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)	२४
१३- महामारी और हमारी स्वास्थ्य-रक्षक सेना (श्रीहनुमानप्रसादजी गोयल)	२६
१४- भगवान् शिवकी शरणागतिसे परम कल्याणकी प्राप्ति	२९
१५- 'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु' **[तीर्थ-दर्शन]** (डॉ० श्रीअनुजप्रतापसिंहजी, डी०लिट०)	३०
१६- 'सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो'	३४
१७- महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र **[संत-चरित]** (श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)	३५
१८- मानव-जीवनमें सुख और दुःख (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३८
१९- लक्ष्मीका वास कहाँ है ?	३९
२०- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	४०
२१- गोमाताके प्रति कृतज्ञ भाव रखें **[गो-चिन्तन]** (श्रीअशोकजी कोठारी)	४१
२२- **साधनोपयोगी पत्र—**	४३
(१) जीवनको भगवत्परायण बनायें	४३
(२) सकाम और निष्काम भक्ति	४४
२३- व्रतोत्सव-पर्व [भाद्रपदमासके व्रत-पर्व]	४५
२४- **कृपानुभूति**	४६
हमारी नैया पार लगी	४६
२५- **पढ़ो, समझो और करो**	४७
(१) एक भारतीय भिखारीका आदर्श चरित्र	४७
(२) खुदा आप-जैसा ही कोई होगा	४७
(३) श्वेतकुष्ठनाशक गंगाजल	४८
(४) भगवान्‌की अन्तर्वाणी	४९
२६- **मनन करने योग्य**	५०
करत-करत अभ्यासके जड़मति होत सुजान	५०

चित्र-सूची

चित्र		पृष्ठ
१- अर्जुनको भगवान् शिवकी महिमा बताते व्यासजी	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- पराम्बा भगवती पार्वतीकी शिवाराधना	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- अर्जुनको भगवान् शिवकी महिमा बताते व्यासजी	(इकरंगा)	६
४- श्रावणमासमें शिव-पूजन	(,,)	२१
५- धृतराष्ट्रको समझाते महात्मा विदुर	(इकरंगा)	२४
६- नन्दबाबाको गौओंकी महिमा बताते श्रीकृष्ण	(,,)	४२
७- वरदराजपर भगवती सरस्वतीकी कृपा	(,,)	५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (` 3,000), पंचवर्षीय US$ 250 (` 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—साधनके तीन स्वरूप होते हैं—'अभ्यास', 'रुचि' और 'रति।' मनमें उत्साह, उल्लास, लगन, तत्परता आदि न होनेपर भी; साधन करते समय चित्तके ऊबने, घबराने या कभी-कभी साधन छोड़नेका मन होनेपर भी लाभकी आशासे जो हठपूर्वक साधन किया जाता है, वह अभ्यासका प्राथमिक रूप है। साधन करते-करते जब अभ्यास बढ़ जाता है, तब उकताहट, घबराहट नहीं होती, साधन अच्छी तरह होने लगता है, परंतु उसमें आनन्दोल्लास नहीं होता—यह अभ्यासका मध्यम रूप है और जब वही अभ्यास सुदृढ़ होकर आनन्द देने लगता है, जब उसके लिये मनकी कुछ टान हो जाती है और छोड़नेमें बुरा-सा लगता है, तब उसे उत्तम अभ्यास कहते हैं। इस उत्तम अभ्याससे ही साधनमें 'रुचि' उत्पन्न होती है।

याद रखो—'रुचि' उत्पन्न होनेपर साधनमें स्वाद आता है, रसकी अनुभूति होती है, मन चाहता है, बराबर साधन चलता रहे और उससे सुन्दर रस मिलता रहे। जैसे भोजनमें रुचि होनेपर भोज्यपदार्थ स्वादिष्ट लगते हैं, उनके खानेको मन चलता है, वैसे ही इसमें साधनपर मन चलता है। पर जैसे पेट भर जानेपर कुछ समयके लिये रुचि मिट जाती है, वैसे ही इस क्षेत्रमें भी साधन करनेमें रसानुभूति होनेपर भी कभी-कभी मन अघाया हुआ-सा दीखता है, और साधनका प्रवाह रुक-सा जाता है। पर इस प्रकार रुचिका साधन करते-करते अन्तमें साधनमें अनुराग पैदा हो जाता है। यह अनुराग ही 'रति'का रूप धारण करता है।

याद रखो—जब साधनमें 'रति' हो जाती है, तब फिर कभी उसके रुकनेका प्रश्न ही नहीं रह जाता। फिर तो जैसे गंगाकी धारा सदा-सर्वदा अविच्छिन्न रूपसे समुद्रकी ओर बहती रहती है, वैसे ही साधनकी धारा अविराम गतिसे चलती है। इसमें विशेषता यह होती है कि इस रतिके साधनमें नित्य-नवीन आनन्दकी अनुभूति होती है। कभी किसी भी स्थितिमें चित्त अघाता ही नहीं, वरं जितना ही यह साधन बढ़ता है, उतनी ही साधनकी नयी-नयी लालसा जाग्रत् होती है। कोई भी क्षण ऐसा नहीं जाता, जिसमें साधनका तार टूटता हो। प्रतिक्षण नया-नया रस प्राप्त होनेसे उत्साह और उल्लास बढ़ते रहते हैं। अन्तमें मनपर पूरी तरहसे साध्यका एकाधिपत्य हो जाता है, या यों कहिये कि समस्त मन साध्यके प्रति सम्पूर्णतया समर्पित होकर उसीका बन जाता है, तदनन्तर साध्यकी प्राप्ति हो जाती है।

याद रखो—योगकी भाषामें 'अभ्यास' चित्तकी 'विक्षिप्त' स्थिति है, 'रुचि' 'एकाग्र' स्थिति है और 'रति' 'निरुद्ध' स्थिति है। या अभ्यास 'धारणा' है, रुचि 'ध्यान' है और रति 'समाधि' है। ज्ञानकी भाषामें अभ्यास 'पहली भूमिका' है, रुचि 'दूसरी' और 'रति' 'तीसरी भूमिका' है, जिसके अन्तमें वस्तुतत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है। भक्तिकी भाषामें अभ्यास 'वैधी भक्ति' है, रुचि 'साधनभक्ति' है और रति 'प्रेमाभक्ति' है, जो भगवान्‌को प्रेमास्पदरूपसे प्राप्त करा देती है।

याद रखो—साधकका जिस मार्गमें विश्वास हो, जिस मार्गमें उसे सुविधा प्रतीत होती हो, निर्देशकने जो मार्ग बतलाया हो, उसको उसीपर श्रद्धाके साथ धैर्य धारण करके चलना चाहिये। अभ्यास करते-करते वह अपने-आप ही अभ्यासकी परिपक्वता होनेपर 'रुचि' और 'रति'के स्तरपर पहुँच जायगा और तब वह अपनेको साध्यके समीप जानकर परम प्रसन्न होगा; परंतु जो साधक क्षण-क्षणमें मार्ग-परिवर्तन करेगा, उसका तो अभ्यास ही सिद्ध होना कठिन हो जायगा। 'रुचि' और 'रति' की बात तो अलग रही। '**शिव**'

आवरणचित्र-परिचय—

शिव-महिमा

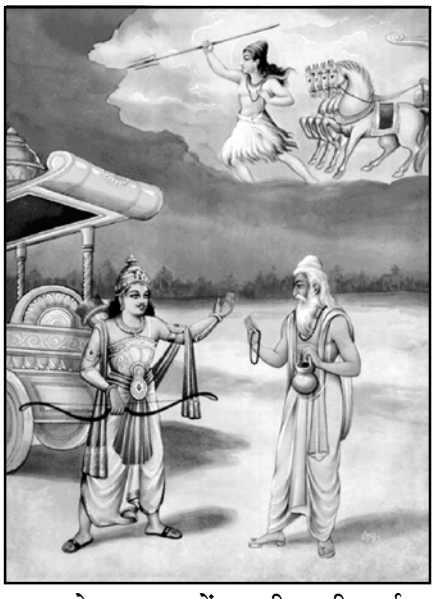

महाभारतके महासमरमें गाण्डीवधारी अर्जुन कौरवोंका संहार कर रहे थे। जिधर श्रीकृष्ण रथको घुमाते थे, उधर अर्जुनके बाणोंसे बड़े-बड़े महारथी तथा विशाल सेना मारी जाती थी। द्रोणाचार्यकी मृत्युके पश्चात् कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। इसी बीच अचानक महर्षि वेदव्यासजी स्वेच्छासे घूमते हुए अर्जुनके पास आ गये। उन्हें देखकर जिज्ञासावश अर्जुनने उनसे पूछा—'महर्षे! जब मैं अपने बाणोंसे शत्रुसेनाका संहार कर रहा था, उस समय मैंने देखा कि एक तेजस्वी महापुरुष हाथमें त्रिशूल लिये हमारे रथके आगे-आगे चल रहे थे। सूर्यके समान तेजस्वी उन महापुरुषका पैर जमीनपर नहीं पड़ता था। त्रिशूलका प्रहार करते हुए भी वे उसे हाथसे कभी नहीं छोड़ते थे। उनके तेजसे उस एक ही त्रिशूलसे हजारों नये-नये त्रिशूल प्रकट होकर शत्रुओंपर गिरते थे। उन्होंने ही समस्त शत्रुओंको मार भगाया है। किंतु लोग समझते हैं कि मैंने ही उन्हें मारा और भगाया है। भगवन्! मुझे बताइये, वे महापुरुष कौन थे?'

कमण्डलु और माला धारण किये हुए महर्षि वेदव्यासने शान्तभावसे उत्तर दिया—'वीरवर! प्रजापतियोंमें प्रथम, तेजःस्वरूप, अन्तर्यामी तथा सर्वसमर्थ भगवान् शंकरके अतिरिक्त उस रोमांचकारी घोर संग्राममें अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्य आदिके रहते हुए कौरवसेनाका विनाश दूसरा कौन कर सकता था! तुमने उन्हीं भुवनेश्वरका दर्शन किया है। उनके मस्तकपर जटाजूट तथा शरीरपर वल्कल वस्त्र शोभा देता है। भगवान् भव भयानक होकर भी चन्द्रमाको मुकुटरूपसे धारण करते हैं। साक्षात् भगवान् शंकर ही वे तेजस्वी महापुरुष हैं, जो कृपा करके तुम्हारे आगे-आगे चला करते हैं।'

एक बार ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त करके तीन असुर—तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली आकाशमें विमानके रूपमें नगर बसाकर रहने लगे। घमण्डमें फूलकर ये भयंकर दैत्य तीनों लोकोंको कष्ट पहुँचाने लगे। देवराज इन्द्रादि उनका नाश करनेमें सफल न हो पाये। देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान् शंकरने उन तीनों पुरोंको भस्म कर दिया। वीरवर अर्जुन! उनका भोलापन सुनो—'जिस समय दैत्योंके नगरोंको महादेवजी भस्म कर रहे थे, उस समय पार्वतीजी भी कौतूहलवश देखनेके लिये वहाँ आयीं। उनकी गोदमें एक बालक था। वे देवताओंसे पूछने लगीं—'पहचानो, ये कौन हैं?' इस प्रश्नसे इन्द्रके हृदयमें असूयाकी आग जल उठी और उन्होंने जैसे ही उस बालकपर वज्रका प्रहार करना चाहा, तत्क्षण उस बालकने हँसकर उन्हें स्तम्भित कर दिया। उनकी वज्रसहित उठी हुई बाँह ज्यों-की-त्यों रह गयी। अब क्या था, बाँह उसी तरह ऊपर उठाये हुए इन्द्र दौड़ने लगे। महान् कष्टसे पीड़ित होकर वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीको दया आ गयी। वे इन्द्रको लेकर शंकरजीके पास पहुँचे। ब्रह्माजी शंकरजीको प्रणाम करके बोले—'भगवन्! आप ही विश्वका सहारा तथा सबको शरण देनेवाले हैं। भूत और भविष्यके स्वामी जगदीश्वर! ये इन्द्र आपके क्रोधसे पीड़ित हैं, इनपर कृपा कीजिये।'

सर्वात्मा महेश्वर प्रसन्न हो गये। देवताओंपर कृपा करनेके लिये ठठाकर हँस पड़े। सबने जान लिया कि पार्वतीजीकी गोदमें चराचर जगत्के स्वामी भगवान् शंकरजी ही थे। वे सभी मनुष्योंका कल्याण चाहते हैं, इसलिये उन्हें शिव कहते हैं। वेद, वेदांग, पुराण तथा अध्यात्मशास्त्रोंमें जो परम रहस्य है, वह भगवान् महेश्वर ही हैं। अर्जुन! यह है महादेवजीकी महिमा!

यज्ञोपवीत

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

यज्ञ और उपवीत—इन दो शब्दोंसे यज्ञोपवीत शब्द बना है। वैदिक यज्ञोंको करनेका अधिकार यज्ञोपवीत-संस्कारसे प्राप्त होता है। यज्ञोपवीत इस बातका सूचक है कि यह द्विजाति है, इसे वेदाध्ययन एवं वैदिक कर्मका अधिकार प्राप्त है। द्विजाति पुरुष वैदिक कर्मोंमें अधिकार-प्राप्तिके लिये उपनयन-संस्कारद्वारा यज्ञोपवीत धारण करता है। इसीलिये यज्ञोपवीतका एक नाम ब्रह्मसूत्र अर्थात् वेद (ब्रह्म)-के अधिकारका सूचक है।

यज्ञोपवीत वेदाधिकारसूचक है। वेदका मुख्य मन्त्र है—वेदमाता गायत्री। गायत्रीमें २४ अक्षर हैं। यह मन्त्र चारों वेदोंमें है। चारों वेदोंके गायत्री-मन्त्रोंकी कुल अक्षर-संख्या ९६ हुई। इससे यज्ञोपवीत-सूत्र ९६ अंगुलका होता है। सामवेदके छान्दोग्य-परिशिष्टके अनुसार तत्त्व २५, गुण ३, तिथि १५, वार ७, नक्षत्र २७, वेद ४, काल ३, मास १२—इन सबके योग ९६ अंगुलको यज्ञोपवीत-सूत्रका परिमाण रखकर उसे भुवनात्मक प्रतीक माना गया है। उपनीत होनेवाले व्यक्तिको ९६ सहस्र वैदिक ऋचाओंका अधिकार प्राप्त है—यह भी यज्ञोपवीतका सूत्र ९६ अंगुल होनेमें प्रधान हेतु है।

यज्ञोपवीतमें तीन सूत्र त्रिगुणित किये गये होते हैं। त्रिगुणसे निर्मित जगत्में वैदिक त्रयीके आधारसे ऋणत्रय (देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण)-से मुक्त होना हमारा कर्तव्य है—यह त्रिगुणित तीनों सूत्र बतलाते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विधिसे निर्मित यज्ञोपवीत नौ तन्तुवाला बन जाता है। इन नौ तन्तुओंमें ॐकार, अग्नि, अनन्त, चन्द्र, पितृगण, प्रजा, वायु, सूर्य, सर्वदेवका निवास है। इनसे उन देवताओंके गुण आते हैं।

यज्ञोपवीतमें चार ग्रन्थि नहीं होती। उसमें अपने प्रवरके अनुसार १, २, ३ या ४ गाँठ होनी चाहिये। यह प्रवरकी सूचक है। इन गाँठोंसे नीचे पहले ब्रह्मग्रन्थि होती है, जो सूचित करती है कि वेदाधिकार प्राप्त करनेका तात्पर्य भी सर्वमय—सबमें व्याप्त परम ब्रह्मको प्राप्त करना ही है।

शास्त्रकारोंने दाहिने कानमें आदित्य, वसु, रुद्र, वायु, तथा अग्नि आदि देवताओंका निवास माना है।

आदित्या वसवो रुद्रा वायुरग्निश्च धर्मराट्।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं तिष्ठन्ति देवताः॥

इसलिये शौचादिके समय जबकि हम अपवित्र दशामें होते हैं, वेदके पवित्र अधिकारके प्रतीक यज्ञोपवीतको दाहिने कानपर चढ़ा लेते हैं। उस समय उसकी पवित्रताकी रक्षा उस कर्णमें स्थित देवताओंद्वारा होती है—यही इसका भाव है। मनुष्यका हृदय वाम भागमें है—यज्ञोपवीतका उद्देश्य हम हृदयसे समझते-मानते हैं और मानेंगे, यह सूचित करता हुआ यज्ञोपवीत वाम कन्धेसे होता हुआ, हृदयपर होकर दाहिने आता है। यज्ञोपवीत वेदका सपवित्र प्रतीक है—अतः अपवित्र दशामें उसकी पवित्रता न रखी गयी हो, वह कर्णस्थित देवताओंको रक्षाके लिये न दिया गया हो तो अपवित्र माना जाता है, अतः बदला जाता है।

यज्ञोपवीत धारण करके जो संध्या, गायत्री-जप नहीं करता—वह अनुचित करता है। परंतु जो यज्ञोपवीत धारण ही नहीं करता, उसे तो वैदिक कर्मोंके करनेका अधिकार ही नहीं है। वह इन्हें करता है तो अनधिकार कार्यका दोषी होता है। इसलिये द्विजातिको यज्ञोपवीत धारण करना ही चाहिये।

गुणोंका धारण तथा अवगुणोंका त्याग तो सभीके लिये इष्ट है। जो द्विजाति हैं, उनके लिये भी तथा जो द्विजाति नहीं हैं उनके लिये भी।

गुणाधानके लिये तामसी पदार्थोंका त्याग करना उत्तम बात है। जहाँतक हो सके राजस पदार्थोंका भी त्याग करना चाहिये। इससे सात्त्विक गुणोंकी अभिवृद्धिमें सहायता मिलती है।

मान और विवेक

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीदयानन्द गिरिजी महाराज)

एक भारवि नामवाले कवि थे। उनके पिताजी भी राजदरबारमें बड़े मान-प्रतिष्ठावाले कवि थे। उस समय कन्नौज राज्यका राजा बड़ा धर्मात्मा था। उसकी सभामें बहुत कवि रहते थे। जो विद्वान् कवि होता था, उसको राजा पुरस्कार भी देता था। राजा उनको जीवन-यापनके लिये खर्च भी देता और उनकी शिक्षाएँ सुनता था। जब वे कवि राजदरबारमें आते, तो राजा आदरके रूपमें उनको एक पानका बीड़ा भी देता था। उन कवियोंमें एक पण्डित था; जो आप तो विद्वान् था ही, परंतु उसका लड़का उससे भी अच्छा कवि निकला। यद्यपि उस लड़केकी आयु अभी १७-१८ वर्षकी थी, परंतु उसकी कविता बड़ी मधुर, मार्मिक और शिक्षा देनेवाली होती थी। जब वह राजदरबारमें अपनी कविता सुनाता, तो उसकी उम्रको देखते हुए राजा खुश हो करके उसका स्वागत दो पानके बीड़े देकर करता। बहुतसे पण्डित यह देखकर जलते; परंतु उसके पिताजीके मनमें बड़ी खुशी होती और साथमें चिन्ता भी होती कि यह अभी १७-१८ सालका बच्चा है; इसके गुरुकुलके २५ वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। इतने बड़े मानसे इसकी बुद्धि ठिकाने न रहे और यह अपने अन्दर अभिमान कर ले तो आगे इसकी उन्नति रुक जायगी। सारे दर्शनशास्त्र अभी इसे जानने हैं। आध्यात्मिक विद्या भी सारी जाननी है। इस बच्चेने खाली थोड़ा-सा संस्कृतका अध्ययन कर लिया और थोड़ा साहित्य जान लिया। उसके अनुसार बुद्धि अच्छी थी, कवि बन गया। यदि यह इस मान-आदरके चक्करमें रह गया तो इसकी उन्नति कैसे होगी?

जिस समय उसका लड़का कहींसे ज्यादा मान-आदर पाकर फूला-फूला घर आकर अपनी माँसे अपनी बात सुनाने लगता तो पासमें बैठा हुआ उसका पिता उसमें अभिमान न आ जाय इस उद्देश्यसे कहता, 'यह लड़का बड़ा मूर्ख है। इसको यह समझ ही नहीं है कि सभामें मान तो मेरा है। मेरा लड़का होनेसे दूसरे तेरा मान करते हैं, तू अपना ही समझे बैठा है। तू विद्या की उन्नति कर और इस मानके चक्कर में न रह। थोड़ी विद्या तेरी अवश्य है, परंतु उत्तम मानके योग्य अभी नहीं है। तेरा अभी मान क्या है? कलका छोकरा है और अभी कुछ नहीं जानता है।' इस तरह कहनेके पीछे उसका पिता चाहता था कि उसके अन्दर तेज पैदा हो, जिससे वह जोशमें आकर अपनी विद्याको अधिक बढ़ानेका यत्न करे। पिताकी बात सुनकर वह और मन लगाकर अपना अध्ययन-मनन करता रहता। इस प्रकार एक-दो साल और बीत गये।

एक दिन बड़ा भारी कवि-दरबार हुआ। अनेक राजा भी उस दरबारमें उपस्थित थे। उस दरबारमें सबसे बड़ा कवि वही लड़का माना गया और उसको बड़ा आदर-मान मिला। इस कवि-दरबारमें राजाने पुरस्कार भी रखा था कि जो आजके दरबारमें बड़ा कवि निकलेगा, उसको वह धन भी देगा। राजा ने पुरस्कारके रूपमें उसे महल-जैसा एक नया घर और प्रभूत मात्रामें धन भी दिया। उस दिन उस लड़केने सोचा कि आज मैं घर जाकर पिताजीको बताऊँगा कि यह मेरा मान है कि आपका मान है? इस प्रकार उसके मनमें अहंकार आ गया।

वह घरमें गया और खुशी-खुशी अपनी माँके सामने जाकर अपना मान दिखाने लगा और बोला—पिताजी रोज मुझे मूर्ख कहते हैं और मेरा अपमान करते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि मेरे पिताजीको भी मेरा मान सहन नहीं होता। देखो, मैं आज कितना मान लेकर आया हूँ? उसकी माँ कहने लगी कि 'कोई बात नहीं बेटा, वे तेरे पिताजी हैं और तेरे भलेके लिये ही कहते हैं।' परंतु उसकी समझमें वह बात नहीं बैठी। देखो, यह मानका बन्धन, मनुष्यको कितना अन्धा बना देता है तथा बुद्धिमान्‌को भी बुद्धिहीन कर देता है। अन्तमें जिस समय उसका पिता घरपर आया, तो उसको वह सुनाने लगा कि देखो, पिताजी! आज यह मैं कितना आदर-मान पाया हूँ? यह क्या बच्चा समझकर मुफ्तका ही राजाने मान दिया है?

इस प्रकार लड़केके वचन सुनकर उसके पिताने पहलेसे और भी अधिक भला-बुरा सुना दिया और कहा कि 'तू मूर्खका मूर्ख ही रहा। अरे! तेरी बुद्धि भ्रष्ट करनेके लिये ही यह सारा किया गया है। तू समझता नहीं है, मान किसका है? तेरा मान कुछ नहीं है, तेरे कुल और बाप-

दादोंका मान राजदरबारमें है, जो तुझे मिल रहा है। तू क्यों अभिमानी हो गया? तेरेको कुछ भी आता-जाता नहीं है।' जैसे-जैसे जितना वह मानसे फूला हुआ था, पिताने उतने ही मनसे उसे निन्दारूपी डंडे मारे तो उसके मनमें चिढ़ हो गयी और समझा कि मेरा बाप मेरा मान सहन नहीं कर सका। उसके मनमें ऐसा विचार आया कि यह पिता (बाप) मेरा बैरी है, मेरा हितकर नहीं है। जैसे दूसरोंको मेरा मान बुरा लगता है, उसी प्रकार मेरे पिताको भी मेरा मान अच्छा नहीं लगता है और सहन करनेमें नहीं आ रहा है। इसको इतना मान तो राजदरबारमें मिला नहीं और मेरा मान सहन नहीं कर सकता। इस प्रकारकी बुद्धि उसकी बन गयी।

जब लड़केको पितासे उचित मात्रामें मान नहीं मिला, तो उसके मनमें आया कि पिताजी नीचे बैठ करके भोजन करते हैं। मैं छतपर बैठ जाऊँगा। जब पिताजी खाना खानेके लिये इसी छतके रोशनदानके नीचे बैठे हुए होंगे, उस समय ऊपरसे बड़ा भारी पत्थर इस छतके रोशनदानमें-से गिराकर पिताजीको मार दूँगा। देखो, यहाँतक उसका दुष्ट-संकल्प बन गया।

इस विचारको लेकर वह छुपकर ऊपर जाकर बैठ गया। उसने ऐसा प्रतीत करवाया कि पिताद्वारा की गयी निन्दासे क्षुब्ध होकर वह घरसे बाहर रुष्ट होकर कहीं निकल गया अर्थात् भाग गया है। उसका पिता, जो राजकवि था, राजदरबारसे घरपर आया तो उस लड़केकी माताने आते ही कहा कि आपने बेटेकी इतनी निन्दा की है कि वह आज सुबह ही घरसे चला गया और उसने आज भोजनतक नहीं किया।

जब उसकी माताने लड़केके घरसे भागनेके बारेमें कहा, तो पिताने कहा 'तू भी मूर्ख है, तेरेको भी पता नहीं। वह मेरा बेटा है। मुझे नहीं पता कि उसका भला क्या है? यदि अभीसे वह मानके चक्करमें पड़ गया, जैसे उसको सब जगहसे मान मिलता है, तो उसकी उन्नति रुक जायगी। तुम जानती हो कि उसके मानमें मैं कितना उछलता हूँ और मुझे कितनी खुशी होती है? तुझे मेरी खुशीकी कोई खबर नहीं है। तुम भी मूर्ख हो और वह भी मूर्ख है। मैं ही जानता हूँ कि बेटेको कैसे सँभाला जाता है और कैसे उच्च स्थानतक पहुँचाया जाता है। थोड़े ही सालमें वह पूर्ण हो जायगा। फिर इसकी सबसे ज्यादा खुशी हम दोनोंको ही होगी।' जब पिताने ऐसा कहा, तो वही लड़का ऊपर बैठा सुन रहा था। तब तो उसको ऐसा लगा कि जैसे किसीने उसीके ऊपर पत्थर गिरा दिया। उसने सोचा कि मेरा पिता मेरा इतना भला सोच रहा है और मैं उसको मारनेके लिये चल पड़ा। सचमुच मैं मूर्ख ही हूँ, क्योंकि उनके अन्दरके सही भावोंको नहीं समझ सका। इस प्रकारका भाव उसके मनमें बना कि अब मैं पिताजीके सामने कैसे प्रकट होऊँ? वह जाकर अपने पिताजीके चरणोंमें पड़ गया और कहा कि 'पिताजी! वास्तवमें मूर्खसे भी महामूर्ख हूँ, आप मुझे दण्ड सुनाओ।' पिताजीने कहा कि 'अरे बेटा, किस बातका दण्ड सुनाऊँ?' उसने कहा कि 'मैंने अपने पिताजीको जानसे मार डाला है।' तब पिताजीने कहा कि 'अरे! तूने कहाँ मार डाला है, मैं तो तेरे सामने जीवित बैठा हूँ।' तब सारी बात उसने खोलकर अपने पिताजी को बतायी। पिताजीने फिर कहा, 'सुन बेटे, जैसा मूर्ख तू पहले था, वैसे ही अब तू मूर्खरूपसे सिद्ध भी हो गया। तुझे अभी नहीं पता कि मौत कितने प्रकारकी होती है। जैसे जीवनसे ज्यादा मानको तुम मानते हो; पितासे बड़ा मानको तुम मानते हो, ऐसे मौत भी एक-से-एक बड़ी होती है।' उसने कहा, 'कैसे?' पिताजीने समझाया कि 'मान जाना सबसे बड़ी मौत होती है। इसलिये तू अपना अपमान करा ले।' लड़केने कहा कि मेरा अपमान तो कोई नहीं करता; राजातक मेरा मान करते हैं, मैं अपमान कैसे कराऊँ? पिताने कहा, 'मैं बताता हूँ।' 'तुम अपनी ससुराल चले जाओ। मैं उनको चिट्ठी लिख देता हूँ। तुम वहाँ जाकर कुछ दिन नौकरी करना। जब उनकी नौकरी करेगा, तो जहाँ तुमको मान मिलता है, वहाँ नौकरीका अपमान मिलेगा। जाओ, पत्र मैं लिख देता हूँ और तुम्हें यह ख्याल रखना है कि मैं उनकी (ससुरालवालोंकी) नौकरी कर रहा हूँ। वहाँ तेरा रोज जो अपमान होगा, मान भंग होगा, तो वह मौत बढ़िया है। उससे तेरा प्रायश्चित्त होगा। इस मौतसे नहीं, जिसमें तू एक बार

मरेगा।' उसकी समझमें बात बैठ गयी। उसने कहा, 'देखो, सचमुच मेरे पिताजी बड़े बुद्धिमान् हैं, जो कि मुझे मरनेसे भी बचा रहे हैं और मेरा पाप भी धो रहे हैं तथा मुझे शिक्षा भी दे रहे हैं।'

पिताका पत्र लेकर लड़का ससुराल चला गया। ससुरालमें जानेके बाद कुछ दिन उसका दामादकी तरह स्वागत किया गया। बादमें उन्होंने कहा कि 'देखो, हमारे यहाँ बाजरा पकता है। उसकी रखवालीके लिये चिड़िया उड़ानी पड़ती है। खेतमें मचान हम बाँध देते हैं। अब आप खेतमें जाओ और हमारे खेतोंकी चिड़िया उड़ाओ।' पहली नौकरी तो उसको यही दी गयी। वह कवि तो था ही, इसलिये नौकरी भी करता और अपनी पुस्तक भी लिखता रहा। पासमें और दूसरोंके भी खेत थे। उन खेतवाले लड़कोंको भी कविता सुनाता, जिससे उसने उनको इतना लुभा दिया कि वे लड़के कहने लगे कि आप हमें यही कविता सुनाते रहा करो, आपके खेतोंकी रखवाली तो हम ही कर देंगे।' वह मचानपर बैठा-बैठा कविता रचने एवं पुस्तक लिखनेमें लगा रहता था। इस प्रकार होते-होते काफी दिन बीत गये।

जब दूसरी फसल आयी, तो उसकी घरवालीके बच्चा होनेवाला था। उसके ससुरालवालोंने कहा कि 'आप इस खर्चके जिम्मेवार हो और इसके लिये पाँच सौ रुपयोंकी जरूरत है', 'कहींसे भी पाँच सौ रुपये लाओ', तो लड़के ने कहा कि 'कहाँसे लाऊँ?' तो उन्होंने कहा कि 'यहाँके राजकुमारके पास जाओ, सबसे ज्यादा उसीके पास धन है। उसके पास आप अपनी कोई वस्तु गिरवी रख करके आवश्यक धन ले आओ।' उसने सोचा कि 'मेरे पास और तो कोई वस्तु नहीं है। परंतु मैं कवि हूँ, मैंने एक ग्रन्थ रचा हुआ है, जिसको मैं गिरवी रख देता हूँ। तबतक इस ग्रन्थका प्रचार नहीं करूँगा, जबतक रुपये वापस नहीं दे दूँगा।' ऐसा विचार करके वह राजाके पास गया और कहा कि 'महाराज, मेरे ग्रन्थका यह एक श्लोक आप रख लें और इसके आप कृपया मुझे पाँच सौ रुपये दे दीजिये। जबतक आपके पाँच सौ रुपये वापस नहीं लौटाऊँगा, तबतक मैं इस ग्रन्थका प्रचार नहीं करूँगा।' श्लोकका भावार्थ इस प्रकार है कि 'कोई भी कार्य सहसा (झटपट) नहीं करना चाहिये, कारण कि अविवेक अर्थात् बिना सोच-विचारके झटपट प्रकृतिके जोशसे जो काम किया जाता है, वह परम आपत्तियों (आफतों)-का घर होता है। जो मनुष्य विवेकसे सोच-विचार करके कार्य करता है, उसको सारी सम्पत्तियाँ मिलती हैं।' श्लोक तो अपने ढंगका संस्कृतमें है। अविवेकका अर्थ है बिना विचार किये। विवेक उसे कहते हैं कि जो वस्तु जैसी है, उसको वैसा समझ लेना, जबकि अविवेकमें जो वस्तु जैसी है वैसी तो समझमें आती नहीं तथा कुछ और ही समझमें आती है। राजाने कहा, 'ठीक है; श्लोक तो बहुत बढ़िया है।' पढ़कर उसने सोचा कि हम राजा हैं तथा तलवारके धनी हैं। झटपट कहीं किसीपर क्रोध (गुस्सा) आनेपर तलवार चला देते हैं। इसलिये इस श्लोकको तलवारकी म्यानके शुरूमें रख देते हैं। जब तलवार निकालें तो पहले यह श्लोकका पर्चा गिरे और गिरते ही झटपट हमें सोचनेके लिये चौकस कर दे कि ठहरो, जरा सोचकर काम करना, कहीं ऐसे ही नहीं दूसरेको मार डालना।

राजाने वह श्लोक तलवारकी म्यानमें रख लिया और उसको पाँच सौ रुपये दे दिये। वह पाँच सौ रुपये लेकर घर आ गया और वे रुपये घरवालोंको दे दिये। उसकी घरवालीने पुत्रको जन्म दिया और उसने अपनी ससुरालवालोंसे कहा कि 'आप अपना सब सामान वगैरह लाकर, जो कुछ बेटेका संस्कार करना है, वह करो।'

उस समय मुसलमानोंका राज्य था। जितने भी राजपूत राजा थे, ये सब उनके अधीन थे। कहीं काबुलमें लड़ाई हो रही थी, तो दिल्ली दरबारसे आज्ञा मिली कि गुजरात (काठियावाड़)-का राजा भी फौज लेकर काबुल पहुँच जाय। राजा सेनाके साथ उस आज्ञाको पाकर युद्धक्षेत्रमें पहुँच गया। राजा चार-पाँच सालतक उधर ही रहा तथा आ नहीं सका। जब यह लड़ाईमें गया तो इस राजाका लड़का तीन सालका था। वह चार-पाँच सालमें जवान-जैसा हो गया, कारण कि राजकुमार तो था ही और उसको खाने-पीनेकी सब प्रकारकी मौज थी। परंतु उसकी माताका मोह होनेसे वह अपनी माताके साथ ही सोता था। पाँच वर्ष बाद वह राजा वापस लड़ाईसे आया। उसने सोचा कि

मेरेको पाँच साल महल छोड़े हुए हो गये हैं। इसलिये मैं छुपकर महलमें जाऊँ और देखूँ कि महलकी क्या अवस्था है और मेरी रानी किस प्रकार रहती है? वह रातको डाकूकी तरह रस्सा बाँधकर महलपर चढ़ गया। खिड़की खुली थी और वह देखने लगा कि मेरे बच्चेका क्या हाल है? वह कैसा है? वह राजा क्या देखता है कि रानीका पलंग है, जिसपर दो इकट्ठे सो रहे हैं। ऐसा देखकर उसके मनमें शंका आयी कि मेरी रानीके पास कोई दूसरा व्यक्ति सो रहा है। राजाके अन्दर शंकाके साथ ही राग आया और द्वेष भी उछला। द्वेषके आते ही तलवार निकालना चाहा कि इन दोनोंका सिर ही उड़ा दूँ। ऐसा मनमें आते ही वह तलवार निकालने लगा, तो श्लोकवाला पर्चा बाहर निकलकर जमीनपर गिर गया। इस पत्रके श्लोकके भावार्थको मनमें लाकर उस राजाने सोचा कि मैं जरा विवेक तो कर लूँ अर्थात् निश्चय तो कर लूँ कि यह कौन है? जो मेरे महलमें आया हुआ है। उसने तलवार तो निकाल ली, परंतु उनको काटा नहीं। और जरा चादर खींची, तो बच्चा जो चादर दबाये सो रहा था, एकदम रोने लग गया और 'माँ-माँ' करने लग गया। राजा ने सोचा ओह! यह तो मेरा बेटा है, 'माँ-माँ' कर रहा है। उसको शर्म भी आ गयी और झटपट उस राजाने तलवार म्यानमें रख ली और हँसने लग गया। रानी कहने लगी कि 'हम तो डर गये और सोचा कि कोई डाकू आ गया।' राजाने कहा, 'डरनेकी कोई जरूरत नहीं है, नीचे फौजें खड़ी हैं।'

अब वह राजा एकान्तमें सोचने लगा, यह श्लोकका पर्चा नहीं होता, तो मैं दोनोंका सिर काट डालता। फिर उस अवस्थामें मेरे-जैसा मूर्ख कौन होता? मेरा सारा परिवार ही बर्बाद हो जाता। उसने अनुभव किया कि उस पंडितजीके श्लोकने मुझे एक बड़े भारी अनर्थसे बचा लिया, तो अब उस पंडितजीसे पाँच सौ रुपये तो क्या वापस लेने हैं, उसको पाँच सौ रुपये और दे देंगे।

उधर उस पंडित कविके मनमें आया कि राजा आ गया है, मैं उसका ऋण चुका आऊँ। यह सोचकर वह राजाके पास गया और कहा कि अब मैं यहाँसे जानेवाला हूँ और मेरा श्लोक कृपया मुझे वापस दे दीजिये। अब मैं इसका प्रचार करूँगा और अपने यह पाँच सौ रुपये वापस ले लीजिये। राजाको पाँच सौ रुपये वापस तो क्या लेने थे, पाँच सौ रुपये और दे दिये, तो उसने महाराजसे कहा कि 'ऐसी क्या बात है? मेरेसे तो आपको पाँच सौ रुपयोंका ब्याज लेना चाहिये था, आप ऐसे ही पाँच सौ रुपये और कैसे दे रहे हैं?' राजाने अपनी सारी कथा उस पंडित कविको सुनायी कि कैसे इस श्लोकने मेरा परिवार ही नष्ट होते-होते बचा दिया है। इस प्रकार उऋण होकर एवं पिताके अपमानका प्रायश्चित्त करके वह अपने घर वापस आ गया। कथा तो इतनी ही है। इसमें कवि तो संस्कृतका बहुत प्रसिद्ध कवि भारवि था, जिसका लिखा हुआ 'किरातार्जुनीय' बड़ा काव्य ग्रन्थ है।

अब इस कथामें सीखनेकी क्या बात है? यही समझना है। सहसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये। सुखको पानेके लिये या थोड़ा दुःख पड़नेपर मनुष्यका अपने अन्दर मान भड़कता है। उस समय उसकी समझमें नहीं आता कि मेरे अन्दर एक राक्षस घुसा हुआ है, जो दिखायी तो नहीं देता। ऐसी अवस्थामें यदि एक क्षणभरके लिये सोचा जाय, तो पता लगेगा कि यह मानरूपी राक्षस क्या करवाना चाहता था? इसलिये जीवनमें सहसा कोई कार्य नहीं कर बैठना चाहिये। सोचकर कार्य करनेकी आदत डाल लें। यदि थोड़ा-सा भी सोचकर कार्य करनेकी आदत डालेंगे, तो आपको पता लग जायगा कि यह मानरूपी बन्धन ही बाँधनेवाला था। राजाके अन्दर भी राग, द्वेष, संशय काम कर रहे थे। वह सारा अविद्याका जाल था, जिसके कारण राजा अपने लड़के एवं स्त्रीको मारने जा रहा था, वह एक क्षणभरके लिये उस श्लोकवाले पत्रके सम्मुख आ पड़नेपर इतना सोच गया कि जरा तो ठहर जाऊँ, थोड़ा विवेक तो कर लूँ अर्थात् पता तो कर लूँ कि असलियत क्या है? इसीका नाम विवेक है।

संसारकी सुखमयता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

संसार दु:खमय भी है तथा संसार दु:खलेशशून्य सर्वथा आनन्दमय भी है। जहाँ भगवान्‌की विस्मृति है, जहाँ केवल विषय-भोगोंके प्राप्त करनेकी इच्छा, विषय-भोगोंसे सुखकी आशा तथा विषय-भोगोंमें प्रीति है, वहाँ संसार सर्वथा 'दु:खमय' है और जहाँ संसारकी विषयरूपमें अप्रीति, विषयोंमें सुखबुद्धिका अभाव, भगवत्प्रीत्यर्थ ही विषय-सेवन, भगवल्लीलाकी पूर्तिके लिये ही भोग-स्वीकार तथा संसारमें सर्वत्र सर्वथा भगवान्‌की सन्निधिका अनुभव है, वहाँ संसार 'परमानन्दमय' है।

वस्तुत: संसार आनन्दमय भगवान्‌की ही अभिव्यक्ति है तथा यह भगवान्‌की ही आनन्दमयी लीला है, इसलिये यह स्वरूपत: आनन्दमय ही है। दु:ख तो सर्वत्र भगवान्‌की अनुभूतिके तथा सर्वथा भगवान्‌की स्मृतिके अभावमें ही है। वस्तुत: सर्वत्र मंगलमय आनन्दमय भगवान्‌की सत्ता है, मंगलमय आनन्दमय भगवान्‌का आनन्द है तथा मंगलमय आनन्दमय भगवान्‌के सौन्दर्यका प्रसार है। भगवान्‌के इस मंगलमय आनन्दमय स्वरूपमें जिनकी दृष्टि है, प्रीति है और प्रतिष्ठा है, उनके लिये संसार आनन्दमय है एवं वे ही संसारमें भगवान्‌के आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करते हैं। कोई भी बाह्य स्थिति न तो उनके इस आभ्यन्तरिक नित्य आनन्दको हटा सकती है और न किसीको बाह्य स्थिति यह आनन्द प्राप्त ही करा सकती है।

संसारके विषय-भोगोंमें जिनकी आसक्ति नहीं, कामना नहीं, ममता नहीं तथा भगवान्‌में जिनकी आसक्ति, ममता तथा भगवत्-प्राप्ति या प्रीतिकी कामना है, वे विषय-भोगोंमें रहते हुए उनके स्पर्शसे अलिप्त रहते हैं और वह विषय-भोग भगवान्‌की पूजाकी सामग्री—भगवत्कार्यके साधन बनकर उन्हें नित्य भगवान्‌का सुख-संस्पर्श कराता रहता है। यों नित्य ब्रह्म-संस्पर्शको प्राप्त पुरुष नित्य ब्रह्म-सुखमें—भगवत्प्रेमानन्दमें निमग्न रहते हुए ही संसारमें भगवान्‌का कार्य करते रहते हैं।

इसके विपरीत बाहरसे जो विषय-भोगोंके त्यागी-से दीखते हैं और बाहरी त्यागके चिह्नोंको भी धारण करते हैं, पर जिनके मनमें विषयासक्ति, विषय-कामना तथा संसारके प्राणी-पदार्थोंमें इन्द्रियसुखार्थ ममता है, वे दु:खोंसे मुक्त नहीं हो सकते; क्योंकि भगवत्-विस्मृतिरूप परम दु:खमय संसारको उन्होंने मनमें बसा रखा है, उनके लिये संसार सदा दु:खरूप ही है।

इसके विपरीत, जिनके मनमें भगवान् बसते हैं, जो नित्य भगवत्सम्पर्कमें रहते हैं, जिनकी अहंता भगवान्‌की अनुगामितामें परिणत हो चुकी है, जिनकी सारी ममता भगवान्‌के चरणकमलोंमें केन्द्रित हो चुकी है, जिनकी आसक्ति भगवान्‌की स्वरूप-लीला-सम्पत्तिमें समाहित हो गयी है और जिनकी कामना केवल श्रीभगवान्‌के प्रेमराज्यमें ही विचरण करती है, उनका प्रत्येक कार्य भगवत्प्रीतिकी प्रेरणासे तथा भगवत्-सन्निधिकी अनुभूतिमें होता है और उनकी प्रत्येक वस्तु भगवान्‌के प्रति समर्पित होकर धन्य हो जाती है, वे चाहे बाहरसे त्यागके चिह्न न धारण करते हों, पर वे ही यथार्थ त्यागी हैं। त्यागीको ही शान्ति मिलती है—'**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**' (गीता १२।१२) और जहाँ शान्ति है, वहीं सुख है; अतएव ऐसे पुरुषोंके लिये संसार सर्वथा सुखमय है; क्योंकि वह भगवान्‌का लीला-क्षेत्र है और प्राणिमात्रके कल्याणके लिये होनेवाली मधुर लीलासे ओतप्रोत है। ऐसे ही पुरुष संसारमें धन्य हैं। इस दृष्टिसे संसारको आनन्दसे उत्पन्न, आनन्दमें स्थित और आनन्दमें ही विलीन होनेवाला जानकर आनन्दस्वरूपका अनुभव करना चाहिये।

हनुमान्‌जीद्वारा रावणकी चिकित्सा करनेका यत्न

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

भगवान् रामने सीधे लंकापर आक्रमण न करके पहले हनुमानजीको वहाँ भेजा था। इसका सांकेतिक तात्पर्य क्या है? श्रीरामचरितमानसमें जहाँपर मानस रोगोंका वर्णन आया है, वहाँ मानस रोगोंके वर्णनके साथ ही यह भी कहा गया है कि मनके रोगोंको नष्ट करनेवाला वैद्य चाहिये। और वह वैद्य कौन है?

सदगुर बैद बचन बिस्वासा।

'सद्‌गुरु ही वह वैद्य है।' हनुमान्‌जीको रावणके पास भेजनेका तात्पर्य यह था कि हनुमान्‌जी ही वस्तुत: सद्‌गुरु हैं। वे शंकरके अवतार हैं।

भगवान्‌का तात्पर्य यह है कि रावण-जैसा रोगी, जो अपने रोगके द्वारा स्वयं तो दु:ख पा ही रहा है, पर अपनेसे भी अधिक वह सारे समाजको दु:खमें डाल रहा है, उसके रोगका निदान हो जाय, भगवान् चेष्टा यह करते हैं कि रावणके वधकी आवश्यकता न पड़े। तात्पर्य यह है—'जैसे जब हम किसी रोगीको चिकित्सकके पास ले जाते हैं, तो वह पहले तो यही चेष्टा करता है कि औषधिके द्वारा ही रोग शान्त हो जाय, पर अगर औषधिके द्वारा रोग शान्त न हो तो फिर उसकी शल्य-चिकित्सा भी करनी पड़ती है। भगवान्‌ने हनुमान्‌जीको इसीलिये भेजा कि तुम सद्‌गुरुके रूपमें वैद्य हो, इसलिये तुम जाकर रावणके रोगको देखो और उसे दूर करनेकी चेष्टा करो। रावण यदि स्वस्थ हो जाय तो इसके परिणामस्वरूप समाज भी स्वस्थ होगा। रावणकी अस्वस्थता सारे समाजको विनाशकी ओर ले जा रही है, पर हनुमान्‌जी-जैसे वैद्य भी चेष्टा करके रावणकी चिकित्सा नहीं कर पाते।

हनुमान्‌जीने यहाँपर रावणके रोगोंको पकड़ लिया और उन्होंने यह निर्णय किया कि रावणके रोगोंकी यह जड़ यदि एक बार नष्ट हो जाय, तो उसके अन्य रोग स्वयं नष्ट हो जायँगे। इसीलिये हनुमान्‌जीने तुरंत रावणसे अनुरोध किया कि मैं तुम्हें कुछ और छोड़नेके लिये नहीं कहता, तुम केवल एक ही वस्तु छोड़ दो। क्या?

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।

(५। २३)

'—तुम तमरूप अभिमानका त्याग कर दो।' हनुमान्‌जी इतने उदार हैं कि उसे केवल एक ही वस्तु छोड़नेके लिये कहते हैं। यदि बहुत कुपथ्य करनेवाला रोगी हो और उसको वैद्य अगर सब कुछ छोड़नेके लिये कहे तो शायद वह एक भी बात न माने। तो चतुर वैद्य कहता है कि 'अच्छा भाई, भले सब न छोड़ सको, पर इतना तो छोड़ ही दो। और अभिमानमें भी एक शब्द जोड़ दिया—***'तम अभिमान।'*** चलो, सतोगुणी, रजोगुणी अभिमानको न भी छोड़ पाओ तो कोई बात नहीं है, पर कम-से-कम तमोगुणी अभिमानको तो छोड़ दो। और इसका उत्तर रावणकी ओरसे क्या मिला?

बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥

(५। २३। २)

रावणने हँसकर कहा—'अच्छा! तो अब मुझे तुम-जैसा ज्ञानी गुरु मिला। तुम मेरी चिकित्सा करने—मुझे स्वस्थ बनानेके लिये आये हो? रावणका हँसकर ऐसा कहनेका तात्पर्य यह था कि मुझ-जैसे ज्ञानीको एक बन्दर शिक्षा देने आया है। रावणका रोग इतना बढ़ गया है कि हनुमान्‌जीकी हितकर बात भी उसे नहीं सुहाती।

जो सामान्य रोगी होता है, वह तो वैद्यकी बातोंपर विश्वास करता है और उसके कहे अनुसार पथ्य आदि करता है। पर जब रोग असाध्य हो जाता है और रोगीकी मृत्यु होनेवाली होती है, तो बहुधा उसकी प्रकृति कुपथ्यकी दिशामें होने लगती है, मानो उसकी प्रकृति भी वैसी ही हो जाती है। वैद्य जो कहता है, वह उसका ठीक उलटा ही करता है। इसीलिये लिखा हुआ है—

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥

(६। ३६। ७)

'काल लाठी लेकर किसीको नहीं मारता। वह

धर्म, बल, बुद्धि और विचारको हर लेता है।' हनुमान्‌जी समझ लेते हैं कि रावण-जैसा व्यक्ति स्वस्थ होनेकी स्थितिमें नहीं है। आप देखते हैं कि रावण विभीषणको निकाल देता है। यह रावणके क्रोधका एक दृष्टान्त है।

तो रावणके मनमें क्रोधकी प्रतिक्रिया आयी क्यों? हुआ यह कि जिस समय रावणने हनुमान्‌जीको मृत्युदण्ड दिया तो विभीषण आ गये। और विभीषणने आकर कहा—

नीति बिरोध न मारिअ दूता॥

(५। २४। ७)

—'दूतको मारना नीतिके विरुद्ध है। इसे मत मारिये।'

आन दंड कछु करिअ गोसाँई।

(५। २४। ८)

—'इसे कोई दूसरा दण्ड दे दीजिये।' सभी लोगोंने इसका समर्थन किया—

सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥

(५। २४। ८)

और तब रावणने तुरंत कहा—

सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥

(५। २४। ९)

—'इस बन्दरके शरीरका अंग-भंग करके इसे वापस भेज दो।' और कहा—

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥

(५। २४)

—'बन्दरकी ममता उसकी पूँछमें होती है। इसलिये उसकी पूँछमें कपड़ा लपेट तेलमें डुबाकर उसमें आग लगा दो।' यही उसके लिये उचित दण्ड होगा। फिर हनुमान्‌जीके पूँछमें आग लगा दी गयी। उस आगसे हनुमान्‌जीने सारी लंका जला दी। रावणको विभीषणपर क्रोध यह देखकर आया कि सारी लंका जल गयी, पर विभीषणका घर नहीं जला। यह बड़ी विचित्र बात है। वह सन्तोष भी कर सकता था कि चलो सब घर जल गये, पर एक घर तो बच गया। हनुमान्‌जीने विभीषणका घर क्यों नहीं जलाया? यही उनकी नीति-कुशलता थी। हनुमान्‌जी वस्तुतः रावणपर साम, दाम, दण्ड और भेद—इन चारोंका प्रयोग करते हैं। जब उन्होंने सामका प्रयोग किया तो रावणको भाषण देकर समझाया—

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥

—'हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीखको सुनो।' फिर उसे दाम नीतिका लोभ भी दिखाया—

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥

—'तुम भगवान्‌के चरणकमलको हृदयमें धारणकर लंकाका अचल राज्य करो।' हनुमान-चालीसामें आप लोग पढ़ते हैं—

तुम्हरो मंत्र बिभीषण माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना॥

वह मन्त्र कौन-सा है, यह हनुमान-चासीसामें नहीं लिखा है। पर रामायणमें उसका उत्तर मिल सकता है। वह मन्त्र तो हनुमान्‌जीने पहले विभीषणको नहीं, रावणको दिया था, पर रावणने उस मन्त्रका तिरस्कार कर दिया और विभीषणने उसे ग्रहण कर लिया। हनुमान्‌जीका मन्त्र क्या था? यह कि भगवान्‌के चरणोंको तुम हृदयमें धारण करो और लंकाका अचल राज्य करो। यह सुनकर रावण बिगड़ खड़ा हुआ और बोला—'क्या मैं तुम्हारे कहनेसे लंकाका राजा बनूँगा? वह तो मैं पहलेसे ही हूँ। विभीषणने इस मन्त्रको पूरी तरहसे समझ लिया था कि यह बिलकुल ठीक है। हनुमान्‌जीने रावणको दाम नीतिके द्वारा भी आकृष्ट करना चाहा, पर वह भी सफल नहीं हुआ। फिर उन्होंने दण्ड नीतिका प्रयोग करते हुए रावणको धमकाया भी। उन्होंने रावणसे कहा—

संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥

'तुम-जैसे रामके द्रोहीको हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी नहीं बचा सकेंगे।' दण्डनीतिके भी असफल हो जानेपर अन्तमें हनुमान्‌जीने भेदनीतिका बड़ा कड़ा प्रयोग किया। भेदनीतिका तात्पर्य यह है कि जहाँ दो व्यक्ति मिलकर अधिक शक्तिशाली हो

रहे हों, वहाँ उन दोनोंमें फूट पैदा कर दी जाय। पर यहाँ हनुमान्‌जीकी चेष्टा दूसरे प्रकारकी है। उनकी चेष्टा स्वार्थी राजनीतिज्ञों-जैसी चेष्टा नहीं है। हनुमान्‌जीने देखा कि विभीषण और रावणका एक साथ रहना मानो अच्छाई और बुराईका एक साथ रहना है और इस तरह साथ रहनेमें अच्छाईका लाभ बुराईको मिल रहा है; क्योंकि विभीषणजी जितनी पूजा-पाठ करते हैं, वह सब रावणके द्वारा दी गयी सभी सुविधाओंके बीच ही तो करते हैं। इसलिये उसका पुण्य भी रावणको मिलता जाता है। इस प्रकार वह पुण्य पापको शक्ति प्रदान कर रहा है। इसलिये हनुमान्‌जीने निर्णय लिया कि पुण्यको पापसे अलग कर देना चाहिये। इसलिये हनुमान्‌जी भेदनीतिका प्रयोग करते हैं। उनका भेदनीतिका प्रयोग क्या था?

जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥

—'उन्होंने सबका घर तो जला दिया, पर विभीषणका घर छोड़ दिया।' और उससे रावणके मनमें सचमुच जबरदस्त भेद पड़ गया। रावणने सोचा कि जब मैंने इस बन्दरको मृत्युदण्ड दिया, तो इसी विभीषणने आकर रोका था। और इस बन्दरने सारा नगर जलाया, पर इसीका घर छोड़ दिया। लगता है, दोनों मिले हुए हैं। अब मैं इसको सह नहीं सकता। हनुमान्‌जीको अभीष्ट भी यही था कि रावणके मनमें विभीषणके प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाय। और तब रावणने क्या किया? वह यह भी निर्णय कर सकता था कि विभीषणको कैदमें डाल दे। पर उसने ऐसा नहीं किया। रावणने सोचा कि विभीषण! अगर तुम समझते हो कि तुम्हारा घर नहीं जला, तो भले ही उस बन्दरने तुझे न जलाया हो, पर—***'रावन क्रोध अनल निज'*** मैं अपने क्रोधकी अग्निके द्वारा तुम्हें जलाकर नष्ट कर दूँगा। और इस तरह लात मारकर उसे घरसे निकाल देता है। अगर रावण क्रोधमें आकर विभीषणको निकाल न देता, तो लंकाका रहस्य श्रीरामको ज्ञात न हो पाता तथा कम-से-कम भौतिक संदर्भमें रावणको जीतना उतना सरल नहीं होता। इस तरह रावणका जो अनियन्त्रित क्रोध है, अनियन्त्रित काम है, तथा जो अनियन्त्रित लोभ है, साथमें अहंकार है—वही उसके विनाशका कारण बनता है। वह अपने अनियन्त्रित कामके फलस्वरूप जगज्जननीका अपहरण कर लेता है, तथा अनियन्त्रित लोभके कारण अपने बड़े भाई कुबेरके धनको छीननेमें संकोचका अनुभव नहीं करता। जब कामकी इतनी तीव्रता आ जाय कि कोई जगन्मातापर ही कुदृष्टि डाले और क्रोध इतना तीव्र हो जाय कि बिना अच्छे-बुरेका विचार किये, सबको विनष्ट करनेपर तुल जाय, तो ऐसी स्थितिमें वह सन्निपातसे ग्रस्त तो है ही। इस दृष्टान्तसे लौकिक जगत्‌को यह संदेश मिलता है कि वैद्य चाहे जितना कुशल और प्रतिभाशाली क्यों न हो, और रोगीको चाहे जितनी उत्तम औषधि क्यों न दे, लेकिन जबतक उस औषधिका सेवन रोगी नहीं करेगा, तबतक उसके रोगका निदान नहीं होगा। यहाँ रामके चरणोंको हृदयमें धारणकर सम्पूर्ण लंकाका स्वामी बना रहनेका जो मन्त्र (औषधि) रावणको श्रीहनुमान्‌जीने दिया, उसे रावणने अहंकारवश स्वीकार नहीं किया और विनाशका भागीदार हुआ। यहाँ हनुमान्‌जीने रावणके भीतर जो मनोरोग था, उसका उपचार करनेका यत्न किया। किंतु मन्त्ररूपी औषधिको रावण ग्रहण करनेसे इनकारकर सर्वस्वका विनाश कर लेता है, लेकिन इसी औषधि (मन्त्र)-को विभीषण ग्रहण कर लेता है और लंकेश्वर बनता है। ऐसे ही यदि मानव-जीवनमें व्यक्ति हनुमान्‌जीके मन्त्रको अपने जीवनमें धारण करे तो उसे भी जीवनमें स्थायी सुख-शान्ति प्राप्त होगी। यहाँ हनुमान्‌जीद्वारा मानव-जातिको उसके हितमें बहुत बड़ा सन्देश दिया गया है।

तुम्हरो मंत्र बिभीषण माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना॥

यहाँ हनुमान्‌जीद्वारा रावणके बहानेसे प्रत्येक कल्याणकामी मनुष्यको हृदयमें प्रभु श्रीरामके चरणोंको बसा लेनेका महामन्त्र दिया गया है।

[प्रे०—श्रीअमृतलाल गुप्ता]

साधकोंके प्रति—

'बार-बार नहिं पाइये, मनुष-जनमकी मौज'

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

एक विशेष ध्यान देनेकी बात यह है कि यह मानव-जीवनका समय बहुत ही दुर्लभ है और बड़ा भारी कीमती है। श्रीमद्भागवतमें बताया है—

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्॥

'दुर्लभो मानुषो देहः'—यह मनुष्यसम्बन्धी देह—यह मानव-शरीर महान् दुर्लभ है। इसकी प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े देवता भी ललचाते रहते हैं। ऐसा यह मानव-शरीर अत्यन्त ही दुर्लभ है; क्योंकि इसमें बड़ी-से-बड़ी उन्नति हो सकती है, परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है, जीवका कल्याण हो सकता है और सदाके लिये उसे परम शान्तिकी प्राप्ति हो सकती है। ऐसे दुर्लभ शरीरको प्राप्त करके जो इसे व्यर्थ ही खो देता है, उसे फिर बड़ा पश्चात्ताप करना पड़ता है; क्योंकि यह सर्वथा अलभ्य, अमूल्य अवसर है। अतः इस अवसरके एक-एक क्षणको ऊँचे-से-ऊँचे काममें बितानेकी चेष्टा करनी चाहिये। समयके समान कोई अमूल्य वस्तु नहीं है। संसारमें लोग पैसोंको बड़ा कीमती समझते हैं, आवश्यक समझते हैं, किंतु विचार कीजिये, जीवनका 'समय' देनेसे तो 'पैसे' मिल जाते हैं, पर पैसे देनेसे यह 'समय' नहीं मिलता। हमारे जीवनके लिये हमारे पास हजारों, लाखों, करोड़ों रुपये रहनेपर भी यदि हमारी आयु नहीं है तो हमें मरना पड़ता है; किंतु यदि हमारी आयु बाकी हो और हमारे पास एक भी कौड़ी न हो, तो भी हम जी सकते हैं। हमारे जीवनका आधार यह 'समय' है, न कि 'रुपया'। इतना होनेपर भी हमारे भाई लोगोंकी पैसोंमें तो बड़ी भारी आसक्ति, रुचि और सावधानी है। वे बिना मतलब एक कौड़ी भी खर्च करना नहीं चाहते; परंतु 'समय' की ओर ध्यान ही नहीं है। हमारा समय इतनी देर कहाँ लगा और कहाँ गया, इसमें हमने क्या उपार्जन किया, क्या कमाया, इस ओर हमारा ख्याल ही नहीं है। बड़े आश्चर्यकी बात है! ठीक कहा है श्रीभर्तृहरिने—

पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।

इस प्रमाद-मदिरासे उन्मत्तता छायी हुई है। नशेमें जैसे मनुष्यको अपने शरीरका, कपड़ोंका होश नहीं रहता, ऐसे ही इस विषयमें होश नहीं है, चेत नहीं है; इधर ध्यान नहीं है, लक्ष्य नहीं है। नहीं तो, ऐसे अमूल्य समयका इस प्रकार सत्यानाश क्यों किया जाता? समय जो निरर्थक ही चला जाता है, यही उसका सत्यानाश करना है। ऐसे अमूल्य समयको कीमती-से-कीमती काममें लगानेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। क्या करें, विचार करनेसे मालूम होता है कि बहुत-से भाई तो ताश, चौपड़, खेल-तमाशेमें ही समयको लगा देते हैं; बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, चरस, भाँग आदि नशेके सेवनमें इस समयको बर्बाद कर देते हैं तथा ऐसे ही हँसी-मजाकमें समय खो देते हैं। वे सोचते नहीं कि हम इस आयुमें उपार्जन क्या कर रहे हैं और खर्च कितना हो रहा है।

समय तेजीसे जा रहा है और समयके बीत जाते ही मौत उसी क्षण आ जायगी। मृत्युमें जो देर हो रही है, केवल हमारे जीवनका समय शेष है, उसीके आधारपर। हम जी रहे हैं, यह बुद्धिके आधारपर नहीं, बलके आधारपर नहीं, विद्याके आधारपर नहीं, बल्कि समयके आधारपर, जीवनके आधारपर, आयुके आधारपर। वह आयु इतनी तेजीसे निरन्तर जा रही है कि इसमें कभी आलस्य नहीं होता, कभी रुकावट नहीं होती। यह लगातार दौड़ती चली जा रही है और हम बिलकुल असावधान हैं। कितने आश्चर्य और दुःखकी बात है! आश्चर्य इस बातका है कि बुद्धिमान् होकर हम इतनी हानि कर रहे हैं और दुःख इस बातका है कि परिणाम क्या होगा, और वह अपना परिणाम अपनेको ही भोगना पड़ेगा। इस भूल या दुःखका परिणाम और किसीको नहीं भोगना होगा। अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह जल्दी-से-जल्दी आध्यात्मिक उन्नतिमें अपने समयको लगाये। भर्तृहरिने कहा है—

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

जबतक स्वास्थ्य ठीक है, वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियोंमें साधन—भजन-ध्यान करनेकी शक्ति है, आयु समाप्त नहीं हो गयी है, विवेकी बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि तभीतक आध्यात्मिक उन्नतिके लिये बड़ा भारी प्रयत्न कर ले; क्योंकि जब घरमें आग लग जाय, तब कोई कहे कि जल्दी करो, कुआँ खुदवाओ, आग लग गयी है, जल चाहिये, जल्दी करो, तो यह सुनकर चाहे कितनी ही जल्दी की जाय, उद्योग किया जाय, किंतु अब कुआँ खुदकर कब जल आयेगा? आग तो बड़े जोरोंसे लग गयी है; इसलिये जल्दी-से-जल्दी अपने उद्धारके लिये चेष्टा करनी चाहिये। आध्यात्मिक उन्नतिके लिये देर नहीं करनी चाहिये। दूसरे जो सांसारिक काम हैं, ये आप करेंगे तो भी हो जायँगे और आप न करेंगे तो आपके बेटे-पोते इनको कर लेंगे, परंतु आपका कल्याण कौन-से बेटे-पोते कर लेंगे? आपके पास हजारों-लाखोंकी सम्पत्ति है, बहुत धन है, बड़ा कारोबार है, किंतु आपका शरीर जाता है और पीछे कोई कुटुम्बी भी नहीं है, तो जितना धन है, उसको राज्य सँभाल लेगा, आपकी मिलों-फैक्टरियोंको राज्य चला लेगा; पर आपके उद्धारमें कमी रहेगी तो उसको कौन-सा राज्य पूरी कर लेगा। यह काम दूसरेसे होनेवाला नहीं; इस कामको तो आप स्वयं ही करेंगे तभी होगा; इसलिये मनुष्यको चाहिये कि दूसरे जितने भी काम हैं, उनकी ओर ध्यान न देकर केवल एक आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ही ध्यान दे। नीतिकारोंने भी कहा है—

कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्।

—करोड़ों कामोंको छोड़कर एक भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये। दूसरे मौके तो हरेकको मिल जाते हैं, पर यह मौका बार-बार नहीं मिलता।

खादते मोदते नित्यं शूनकः शूकरः खरः।
तेषामेषां को विशेषो वृत्तिर्येषां तु तादृशी॥

खाना, पीना, ऐश-आराम करना आदि तो मनुष्य क्या, पशु-पक्षियोंमें भी हो जाता है, परंतु आध्यात्मिक उन्नतिका अवसर मनुष्ययोनिके सिवा और कहीं नहीं है। इसलिये बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिये। आजतक समय चला गया है, विचार करनेसे दुःख होता है। सन्तोंने कहा है कि 'भजनके बिना जो दिन गये, वे हमारे हृदयमें खटकते हैं। किंतु भाइयो! अब क्या हो!'

अब पछिताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

समय चला गया, उसके लिये पछतानेसे क्या होगा, अब तो यही है कि ***'गयी सो गयी, अब राख रहीको।'*** जो समय बचा है, उसी समयको सावधानीके साथ ऊँचे-से-ऊँचे काममें लगानेकी विशेष चेष्टा करें तो आगे तो नहीं रोना पड़ेगा। हो गया सो हो गया, परंतु अब आगेके लिये पूरे सावधान हो जायँ, तब ही हमारा जीवन सफल हो सकता है।

आप कहेंगे कि इतने दिन चले गये, अब क्या होगा? इसका उत्तर यह है कि अब भी निराश होनेकी बात नहीं है। जैसे कुएँमें बहुत रस्सी चली जाती है, पर एक हाथ भी रस्सी यदि हाथमें रहती है तो उससे लोटेको कुएँसे बाहर निकालकर जल पी लेते हैं; पर यदि वह हाथभर भी रस्सी हाथमें नहीं रहती है, वह भी हाथमेंसे छूट जाती है तो फिर ऐसा नहीं है कि वह हाथभर ही नीचे जायगी, वह तो कुएँमें ही नहीं, कुएँके जलके भी नीचे तहमें चली जायगी। फिर तो उसे निकालनेके लिये बड़ी रस्सी चाहिये, काँटा चाहिये और जब बहुत देर मेहनत करेंगे, तब कहीं वह लोटा-डोरी मिलेगी। नहीं तो, बड़ी कठिनता है। ऐसे ही आजतककी आयु कुएँमें गयी। ऐसी गयी कि काम नहीं आयी; किंतु अब भी जो थोड़ी-सी उम्र शेष है, उसीको अच्छे काममें लगा दें तो हमारा मनुष्यजीवन सफल हो सकता है; पर यदि आयुका यह बचा हुआ थोड़ा-सा समय भी यों ही बीत गया तो फिर सिवा पश्चात्तापके और कुछ नहीं होगा। क्या पता है कि फिर यह मानव-जीवन कब मिलेगा।

'बार-बार नहिं पाइये, मनुष-जनमकी मौज।'

मनुष्य-जन्म बार-बार नहीं मिलता। इसलिये बड़ी सावधानीके साथ बचे हुए समयको आध्यात्मिक उन्नतिमें विशेषरूपसे लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

तुलसी-जयन्तीपर विशेष—

गोस्वामी तुलसीदासजीकी नाम-निष्ठा

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, एम०एस-सी० (कृषि), पी-एच०डी०)

नाम-जपकी महिमाका वर्णन करते हुए गोस्वामीजीने अपने अनुभवकी जो अभिव्यक्ति श्रीरामचरितमानसमें की है, उसे हृदयंगम करके साधकोंको अलौकिक प्रेरणा मिलती है—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेहू॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥
जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

(रामचरितमानस-बालकाण्ड)

गोस्वामी तुलसीदासने अपने समस्त काव्यको गुणरहित करार देते हुए उसमें केवल एक विश्वविदित गुण बतलाया है, वह है—श्रीराम नाम—

भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।

इस अद्वितीय राम नाममें पाँच अनुपम गुण बतलाये हैं—

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

इस नामकी उदारताका विस्तृत उल्लेख श्रीरामचरितमानसके बालकाण्ड दोहा सं०१८—२७ के बीचमें तथा अन्यत्र भी मिलता है, इन नौ दोहोंमें क्रमशः नौ सम्बन्धोंके लक्ष्य हैं, जो जीवके ईश्वरप्राप्तिहेतु अभीष्ट हैं, इनमेंसे किसी एक सम्बन्धसे हम ईश्वरकी प्राप्ति कर सकते हैं। ये सम्बन्ध हैं—पिता, रक्षक, शेषी, भर्ता, ज्ञेय, शरीरी, भोक्ता, आधेय और स्वामी। दोहा-क्रमांक १९वें-में नवों सम्बन्धोंके सूक्ष्मतत्त्व बीजरूपमें आये हैं—

'राम लखन सम प्रिय तुलसी के' से ***'जीह जसोमति हरि हलधर से।'*** तक क्रमशः इन्हींके साक्षात्कारके हैं, इनमें नामके स्वामित्वका नवाँ बीजरूप इस प्रकार है—***'जीह जसोमति हरि हलधर से'*** अर्थात् यदि जीभरूपी यशोदाजीके द्वारा दोनों वर्णों 'रा' और 'म' का रटन होता रहे तो ये दोनों वर्ण कृष्ण-बलरामकी तरह आनेवाली सभी बाधाओं एवं क्लेशोंका हरण करते रहेंगे।

राम नामके दूसरे गुण पावनताका उदाहरण देखें; जिसने रामको भी भक्त हनुमान्‌के अधीन कर रखा है, तथा करोड़ों तीर्थोंसे भी ज्यादा प्रभावी है प्रभुका पावन नाम—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

× × ×

तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन॥

× × ×

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।

राम नामका तीसरा गुण 'पुरान श्रुति सार' पर दृष्टिपात करें, तुलसीदासजीने इसे ब्रह्मा-विष्णु-शिवका स्वरूप और वेदोंका प्राण ही बतलाया है—

'बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो'

'र' 'अ' 'म' अग्नि-सूर्य-चन्द्रका बीजाक्षर होनेसे त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक ताप)-का नाशक एवं सत्-चित्-आनन्दका स्वरूप है।

राम नामका चतुर्थ गुण है—'मंगल भवन', जो अति उदार, अति पावन और श्रुति-पुरानका सार है, वह मंगलकारी होगा ही, तभी तो तुलसीदासजी कहते हैं—

'जग मंगल गुन ग्राम राम के' तथा

'मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की'

राम नामके पाँचवें गुण 'अमंगलहारी' पर ध्यान दें, रामनामसे बड़े-से-बड़ा अमंगल ही क्या; भाग्यमें लिखा अनिष्टकारी योग भी मिट जाता है। यथा—

'मेटत कठिन कुअंक भाल के'

रामनामकी इसी महनीयताको देखते हुए तुलसीदासजी घोषणा करते हैं, कि—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

मानसमें ही इसके उपयुक्त उदाहरणपर दृष्टिपात करें—

१. भायँ—शंकरजी

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥

× × ×

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

२. कुभायँ—वाल्मीकिजी

जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥

तथा

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

३. अनख—रावन—***'कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥'***

४. आलस—कुम्भकर्ण—

राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।

संसारके जितने अमंगलकारी योग हैं, वे हमारे पूर्वकृत पापोंके फलस्वरूप प्रकट होते हैं और रामनाममें अद्‌भुत पापनाशनशक्ति है। कवितावलीके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'भागत अभागु, अनुरागत विराग भानु।' तथा ***'आई मीचु मिटत जपत राम नामको'*** जबकि दोहावलीमें आपने कहा है—

तुलसी 'रा' के कहत ही निकसत पाप पहार।
पुनि आवन पावत नहीं देत 'म'कार किवार॥

तथा

तुलसी अघ सब दूरि गे 'रा' अच्छर के लेत।
फिर नेरे आवत नहीं 'म' अच्छर कहि देत॥

जब पापका क्षरण होगा, अमंगलका नाश होगा तो लोक-परलोकमें सुधार होगा ही—

समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

विनय-पत्रिकामें चेतावनी देते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि, जबतक तू राम नामका जप नहीं करेगा, त्रितापसे जलता रहेगा—

राम राम राम जीह जौलौं तू न जपिहै।
तौलौं तू कहूँ जाय, तिहूँ ताप तपिहै॥

(पद ६८)

प्रकारान्तरसे कवितावलीमें आपने कहा है कि—

'ऐसे कराल कलिकाल में कृपाल
तेरे नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिये॥'

तुलसी-ग्रन्थावलीके विविध ग्रन्थोंमें रामनामपर जो कुछ तुलसीदासजीने लिखा है, विस्तारभयसे वर्णन नहीं किया जा सकता, आप कहते हैं कि वे हृदय फट जायँ, आँखें फूट जायँ और देह भस्म हो जायँ, जो रामनामका स्मरणकर द्रवित नहीं होते, जिनसे अश्रुवर्षा नहीं होती और देह पुलकित नहीं होती—

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं, स्त्रवहिं, पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥
हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवइ हरिगुन सुनत।
कर न राम गुन गान जीह सो दादुर जीह सम॥
स्त्रवै न सलिल सनेहु तुलसी सुनि रघुबीर जस।
ते नयना जनि देहु राम! करहु बरु आँधरो॥

इसीलिये तुलसीदासजी बार-बार कहते हैं—

राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, मूढ मन बारबारं।
सकल सौभाग्य-सुख-खानि जिय जानि शठ, मानि विश्वास वद वेदसारं॥

(विनय-पत्रिका पद ४६)

अन्यत्र पद ६५, ६६ आदिमें भी यही भाव आया है, वे कहते हैं—

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥

अपने लघुतम ग्रन्थ हनुमानचालीसामें आपने हनुमानजीको निवेदित किया है कि 'राम'-नामरूपी महौषधि' आपके पास है।

'राम रसायन तुम्हरे पासा'

गोस्वामीजीके ज्योतिष ग्रन्थ 'रामाज्ञा प्रश्न'में भी रामनाम-माहात्म्यपरक कई दोहे द्रष्टव्य हैं, यथा—

राम नाम कलि कामतरु सकल सुमंगल कंद।
सुमिरत करतल सिद्ध जग, पग-पग परमानंद॥

तथा–

राम नाम पर राम ते प्रीति प्रतीत भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल सगुन सुमंगल कोस॥

तुलसीदासजीका स्पष्ट मत है कि जीवनमें अभीष्ट आलोक और आह्लाद केवल रामनामसे ही प्राप्त हो सकता है। राम नामरूपी ज्ञानका आलोक मोह, तिमिरको दूरकर अन्दर-बाहर सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश फैला देता है।* आह्लाद चित्तको प्रसन्न करता है। लौकिक आह्लाद प्राप्त होता है—धनागम एवं प्रतिष्ठासे तो अलौकिक आह्लाद राम-स्वरूपके चित्तमें प्रकट होनेसे मिलता है। तुलसीदासजी स्वयं अपना उदाहरण देते हैं—

घर-घर मांगत टूक, पुनि भूपति पूजत पाय।
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय॥

वे तो यहाँतक कहते हैं कि रामनामका जप करके मैंने रामको भी ठग लिया है। राम नाममें प्रीति, प्रतीति, विश्वास है और राम नामकी कृपासे मैं अब निश्चिन्त होकर सोता हूँ।

तुलसी गरीब की गई बहोर राम नाम,
जाहि जपि जीहँ रामहू को बैठो धूतिहौ।
प्रीति रामनामसो, प्रतीत राम नाम की,
प्रसाद राम नाम के पसारि पाय सूतिहौं॥

स्पष्ट है कि तुलसीदासजीके मतमें राम नामका आश्रयण और जप ही अभीष्ट एवं कल्याणकारी है।

राम और नाम

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥
राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥
राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥
फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें॥
ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि। रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥

श्रीरामजीने सुग्रीव और विभीषण दोको ही अपने शरणमें रखा, यह सब कोई जानते हैं; परंतु नामने अनेक गरीबोंपर कृपा की है। नामका यह सुन्दर विरद लोक और वेदमें विशेषरूपसे प्रकाशित है। श्रीरामजीने तो भालू और बन्दरोंकी सेना बटोरी और समुद्रपर पुल बाँधनेके लिये थोड़ा परिश्रम नहीं किया; परंतु नाम लेते ही संसार-समुद्र सूख जाता है। सज्जनगण! मनमें विचार कीजिये [कि दोनोंमें कौन बड़ा है ?]। श्रीरामचन्द्रजीने कुटुम्बसहित रावणको युद्धमें मारा, तब सीतासहित उन्होंने अपने नगर (अयोध्या)-में प्रवेश किया। राम राजा हुए, अवध उनकी राजधानी हुई, देवता और मुनि सुन्दर वाणीसे जिनके गुण गाते हैं। परंतु सेवक (भक्त) प्रेमपूर्वक नामके स्मरणमात्रसे बिना परिश्रम मोहकी प्रबल सेनाको जीतकर प्रेममें मग्न हुए अपने ही सुखमें विचरते हैं, नामके प्रसादसे उन्हें सपनेमें भी कोई चिन्ता नहीं सताती।

इस प्रकार नाम [निर्गुण] ब्रह्म और [सगुण] राम दोनोंसे बड़ा है। यह वरदान देनेवालोंको भी वर देनेवाला है। श्रीशिवजीने अपने हृदयमें यह जानकर ही सौ करोड़ रामचरित्रमेंसे इस 'राम' नामको [साररूपसे चुनकर] ग्रहण किया है। **[श्रीरामचरितमानस]**

* राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार। तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

श्रावणमास और उसके व्रत-पर्वोत्सव

चान्द्रवर्षके अनुसार वर्षका पाँचवाँ मास श्रावणमास कहलाता है। लोकमें इसे 'सावन' भी कहते हैं। यह मास भगवान् शंकरको विशेष प्रिय है, इसलिये इस मासमें आशुतोष भगवान् साम्बसदाशिवकी पूजा-आराधनाका विशेष महत्त्व है। जो प्रतिदिन पूजन न कर सकें, उन्हें सोमवारको शिवपूजा अवश्य करनी चाहिये और व्रत रखना चाहिये। सोमवार भगवान् शंकरका प्रिय दिन है।

शिवोपासनाका अत्यन्त व्यापक रूप है, तथापि भक्त अपनी भावनाके अनुसार कृपाप्राप्तिके लिये अनेक प्रकारसे उनकी आराधना करते हैं। भगवान् शिव सगुण-साकार—मूर्तरूपमें तथा निर्गुण-निराकार—अमूर्तरूपमें भी पूज्य हैं। परम शिव, साम्बसदाशिव, उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, मृत्युंजय, पंचवक्त्र, पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति, योगीश्वर, महादेव तथा महेश्वर आदि नाम-रूपोंमें भगवान् शिवकी आराधना होती है। इसके अतिरिक्त ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—ये भगवान् शिवकी पाँच मूर्तियाँ हैं, पंचवक्त्रपूजनमें इन्हीं नामोंसे पूजन होता है। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—ये क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य तथा चन्द्रमें अधिष्ठित मूर्तियाँ हैं। ऐसे ही रुद्ररूपमें एकरुद्र, एकादशरुद्र तथा असंख्यात रुद्रोंके रूपोंमें उन्हींकी आराधना होती है। निर्गुण-निराकाररूपमें हृदयदेशमें उनका ध्यान किया जाता है। लिंगोपासना तो व्यापकरूपमें अनुष्ठित होती ही है।

इन विविध शिवोपासनाओंका अनुष्ठान श्रावणमासमें विशेष फलदायी तथा भगवान् शंकरको प्रीति प्रदान करनेवाला होता है। ऐसे ही शिवमहिमापरक शिवपुराण-लिंगपुराण आदिके पारायण-श्रवण आदिका भी श्रावणमासमें विशेष माहात्म्य है।

श्रावणमें सोमवारका व्रत, प्रदोषव्रत तथा शिवपार्थिव-पूजन परम कल्याणकारी है। सोमवारको यदि प्रदोष पड़ जाय तो वह विशेष फलदायक होता है। व्रतके दिन भगवान् शंकरका षोडशोपचार अथवा पंचोपचार-पूजन, पंचाक्षरमन्त्रका जप, स्तोत्र-पाठ, अभिषेक आदि विशेषरूपसे करना चाहिये। यह सायंकाल (प्रदोषकालमें) करना विशेष महत्त्वपूर्ण है। दिनभर व्रत रहकर पूजनोपरान्त रात्रिमें एक बार भोजन करे। भोजनमें कुछ लोग एक अन्न खानेका भी नियम रखते हैं अथवा केवल फलाहार करते हैं।

भगवान् शिवका पंचाक्षर मन्त्र **'नमः शिवाय'** श्रावणमासमें विशेष रूपसे जपनीय है। ॐकारसे समन्वित होकर यह षडक्षर कहलाता है।

श्रावणमासमें लघुरुद्र, महारुद्र तथा अतिरुद्रपाठ करानेका भी विधान है। यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राष्टाध्यायीका इसमें विशेषरूपसे पाठ होता है। यह अनुष्ठान पाठात्मक, अभिषेकात्मक तथा हवनात्मक—तीन रूपोंमें होता है। भगवान् शंकरको जलधारा विशेष प्रिय है, अतः श्रावणमासमें जो वर्षाऋतुका समय है, भगवान् शंकरका

अभिषेक तथा बिल्वपत्रोंसे उनका अर्चन किया जाता है। बिल्वपत्र तोड़ते समय वृक्षको प्रणामकर निम्न मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

अमृतोद्भव श्रीवृक्ष महादेवप्रियः सदा।
गृह्णामि तव पत्राणि शिवपूजार्थमादरात्॥

(आचारेन्दु)

अर्थात् हे अमृतसे उत्पन्न बिल्ववृक्ष! आप सदा महादेवजीके प्रिय हैं, आपके पत्तोंको मैं शिवजीकी पूजाके उद्देश्यसे आदरपूर्वक ग्रहण करता हूँ।

ऐसे ही शिवाराधनामें भस्म एवं रुद्राक्ष-धारणका भी विशेष महत्त्व है।

श्रावणमासमें जिस प्रकार भगवान् शंकरकी आराधना की जाती है, वैसे ही भगवान् विष्णुकी पूजाके साथ ही उनका दोलारोहणोत्सव तथा झूलनोत्सव भी मनाया जाता है। श्रीराम तथा भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरोंमें भी विविध प्रकारकी झाँकियाँ सजायी जाती हैं और उत्सव होता है। सभी प्रकारकी आराधनाओंकी दृष्टिसे श्रावणमासका विशेष महत्त्व है।

श्रावणमासमें जैसे सोमवारव्रतकी महिमा है। वैसे ही मंगलवारको भी व्रत किया जाता है और उनमें शिवप्रिया भगवती मंगलागौरीका पूजन होता है। विशेष रूपसे विवाहके बाद प्रत्येक स्त्रीको चार-पाँच वर्षोंतक यह व्रत करना चाहिये। यह व्रत अखण्ड सौभाग्य तथा पुत्रकी प्राप्तिके लिये किया जाता है। भगवती मंगलागौरीको निम्न मन्त्रसे प्रणाम करना चाहिये—

कुङ्कुमागुरुलिप्ताङ्गां सर्वाभरणभूषिताम्।
नीलकण्ठप्रियां गौरीं वन्देऽहं मङ्गलाह्वयाम्॥

अर्थात् कुंकुम और अगुरुसे लिप्त अंगोंवाली तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित भगवान् नीलकण्ठ महादेवजीकी प्रिया मंगलागौरीकी मैं वन्दना करता हूँ।

चार वर्षतक लगातार मंगलवारका व्रत करके बादमें उद्यापन करना चाहिये।

श्रावणमास भगवदाराधना एवं अनुष्ठानका मास है, व्रत-पर्वोंका मास है। इस मासमें प्राय: प्रत्येक तिथिको कोई-न-कोई व्रत, पर्व, उत्सव एवं त्यौहार हुआ ही करता है।

श्रावण कृष्ण द्वितीयाको '**अशून्यशयनव्रत**' सम्पन्न होता है। इस व्रतसे वैधव्य तथा विधुरत्वका परिहार होता है। इसमें उपवासपूर्वक भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी आराधना की जाती है। श्रावण शुक्ल तृतीयाके समान ही श्रावण कृष्ण तृतीया भी '**कज्जलीतृतीया**' कहलाती है। इसे कजलीतीज भी कहते हैं। इस तिथिको श्रवण नक्षत्रमें भगवान् विष्णुका पूजन किया जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेशमें विशेषरूपसे कजली तीज मनानेकी परम्परा है। इसमें 'कजरी' का गायन भी होता है। यह एक प्रकारसे लोकोत्सवपर्व है, इस दिन स्त्रियाँ बड़े समारोहसे मेंहदी लगाती हैं और झूला झूलती हैं। इसी तिथिको '**स्वर्णगौरीव्रत**' भी किया जाता है। श्रावण कृष्ण चतुर्थीको '**संकष्ट-चतुर्थीव्रत**' होता है। इसमें भगवान् गणेशकी आराधना होती है। श्रावणकृष्ण सप्तमीको '**शीतलासप्तमीव्रत**' होता है तथा शीतलादेवीका पूजन होता है और शीतलामाताकी कथा सुनी जाती है।

श्रावणकृष्णपक्षकी एकादशी '**कामदा एकादशी**'-के नामसे विख्यात है। इसके माहात्म्यके विषयमें भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरजीको बताया कि इस दिन व्रत करके तुलसीमंजरीसे भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये, इससे सभी प्रकारके अभीष्ट प्रयोजनोंकी सिद्धि होती है।

श्रावणशुक्लपक्ष पर्वोत्सवोंकी दृष्टिसे विशेष महिमामय है। श्रावणशुक्ल तृतीयाको '**तीज**' का मुख्य पर्व होता है। उत्तरभारतमें तीजपर्व बड़े उत्साह एवं समारोहके साथ मनाया जाता है। इसे श्रावणीतीज, हरियालीतीज या कजलीतीज भी कहते हैं। यह विशेषरूपसे बालिकाओं और नवविवाहिता स्त्रियोंका पर्व है। मेंहदी लगायी जाती है, नये वस्त्राभूषण धारण किये जाते हैं तथा झूलनोत्सव होता है, प्रकृतिके उल्लासके साथ मानवमनका उल्लास जुड़ जाता है। कृषिकर्मका आरम्भ भी होता है। अत: घर-घर इस पर्वका उल्लास छाया रहता है।

श्रावणशुक्ल चतुर्थीको '**दूर्वागणपतिव्रत**' होता है। श्रावणशुक्ल पंचमी '**नागपंचमी**' के नामसे विख्यात है। लोकाचार या देशभेदसे कहीं-कहीं कृष्णपक्षमें यह पर्व होता है। पंचमीतिथि नागोंके आविर्भावकी तिथि है। अत: इस दिन नागोंका विशेषरूपसे पूजन होता है। इससे नागोंसे

भय नहीं रहता है। विषदोष भी दूर हो जाता है। नाग भगवान् शंकरके आभूषणके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। अतः यह प्रकारान्तरसे भगवान् शिवके पूजनका ही प्रतीकरूप है। दीवाल या भित्तिपर नागोंका अंकन किया जाता है, प्रतिमा आदि बनाकर भी पूजन किया जाता है। नागोंको दूध अर्पित किया जाता है और नागपंचमीकी वह कथा सुनी जाती है, जिसमें नागमाता क्रदू और गरुड़माता विनताका वृत्तान्त वर्णित है।

राजस्थान आदि कुछ प्रदेशोंमें नागपंचमीका त्यौहार श्रावणकृष्ण पंचमीको मनाया जाता है।

श्रावणशुक्लपक्षकी एकादशी '**पुत्रदा एकादशी**' कहलाती है। इसके माहात्म्यमें आख्यान आया है कि प्राचीनकालमें माहिष्मतीपुरमें महीजित् नामक एक राजा राज्य करते थे, उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये वे निरन्तर चिन्तित रहते थे। एक बार उन्होंने प्रजाके सामने अपना दुःख निवेदन किया और पुत्रप्राप्तिका उपाय पूछा। राजा बड़े ही प्रजावत्सल थे, अतः प्रजाजन राजाके कष्टके निवारणके लिये महर्षि लोमशके पास गये और राजाको पुत्रप्राप्ति कैसे हो—इसका उपाय उनसे पूछा, तब महर्षिने कहा कि देखो! राजा महीजित् जो इस समय राज्यका भोग कर रहे हैं, यह इनके किसी जन्मान्तरीय पुण्यका फल है, किंतु पूर्वजन्ममें ये एक धनहीन वैश्य थे। एक बार प्याससे पीड़ित ये किसी जलाशयके पास पहुँचे, संयोगसे वहींपर बछड़ेके साथ एक प्यासी गौ भी पानी पीने आयी, इन्होंने प्यासी गौको वहाँसे हटाकर स्वयं पानी पिया। इसी पापसे आज ये पुत्रहीन हैं, इन्हें चाहिये कि श्रावणमासके शुक्लपक्षकी पुत्रदा एकादशीका विधिविधानसे व्रत करें, पुत्रकी प्राप्ति होगी। इतना सुनकर प्रजाजनोंने महर्षिको प्रणाम किया और स्वयं पुत्रदा एकादशीका व्रत किया तथा उस व्रतका फल राजाको दे दिया। व्रतके पुण्यप्रतापसे राजाको पुत्र प्राप्त हुआ।

श्रावणशुक्ल पूर्णिमाको '**रक्षाबन्धन**' का पर्वोत्सव मनाया जाता है और इसी तिथिको श्रावणी उपाकर्म होता है। रक्षाबन्धनमें पराह्णव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या दोनों ही दिन न हो तो पूर्वा लेनी चाहिये। यदि उस दिन भद्रा हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि इस दिन प्रातः नदी आदिमें सविधि स्नान करके तर्पण आदि करे। दोपहरमें निर्मित रक्षासूत्रकी प्रतिष्ठाकर उसका पूजन करे और ब्राह्मणसे हाथमें बँधवाये। इस दिन बहनें भी भाइयोंको रक्षा बाँधती हैं।

श्रावणशुक्ल पूर्णिमा उपाकर्मका मुख्य काल है। वेदपारायणके शुभ कार्यको उपाकर्म कहते हैं। यह यज्ञोपवीत होनेके अनन्तर ही होता है। इस दिन प्रतिष्ठित नूतन यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। इस दिन सर्वप्रथम तीर्थकी प्रार्थनाके अनन्तर पंचगव्यका प्राशनकर प्रायश्चित्तसंकल्प एवं हेमाद्रिस्नानसंकल्पसे दशविध स्नान होता है। तदनन्तर अरुन्धतीसहित ऋषिपूजन, सूर्योपस्थान, ऋषितर्पण, यज्ञोपवीतपूजन तथा नवीन यज्ञोपवीत धारण करनेकी विधि है। धारण किये यज्ञोपवीतको विसर्जितकर प्रतिष्ठित नूतन यज्ञोपवीत धारण किया जाता है, यज्ञोपवीत धारण करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

(ब्रह्मोपनिषद्)

इस प्रकार श्रावणशुक्ल पूर्णिमाको श्रावणमास पूर्ण होता है। इस मासके कृत्योंके सम्बन्धमें महाभारतमें बताया गया है कि श्रावणमें पूरे मासपर्यन्त संयम-नियमपूर्वक जो एकभुक्तव्रत करता है और प्रतिदिन भगवान् शंकरका अभिषेक करता है, वह स्वयं भी पूजनीय हो जाता है तथा कुलकी वृद्धि करते हुए उसका यश एवं गौरव बढ़ानेवाला हो जाता है—

श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
तत्र तत्राभिषेकेण पूज्यते ज्ञातिवर्धनः॥

(पुरुषार्थचिन्तामणि)

राग-द्वेष

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)

रागका मतलब है—एकतरफा आकर्षण या स्नेहकी अधिकताके कारण उपजी मनोवृत्ति, जो कि प्रेमका विकृत रूप है। दोनों ओरसे परस्पर आकर्षण हो तो प्रेम कहा जाय। राग रंगको भी कहते हैं, मतलब किसीके रंगमें रँग जाना। किसीपर इतना आसक्त हो जाना कि उसके दुर्गुण, दोष, बुराई दिखायी ही न दें। कोई आकर बताये तब भी विश्वास ही न हो, बल्कि सुनानेवालेपर क्रोध आने लग जाय। राग और आगमें राग अधिक खतरनाक है, क्योंकि आग तो छूनेपर ही जलाती है, पास आनेपर ही जलाती है, परंतु राग तो हजार कि.मी. दूरसे भी जलाता है। आग केवल शरीरको जला सकती है, परंतु राग तो दिलको जलाता है, धीरे-धीरे देहको भी घुन-जैसा लग जाता है। राग व्यक्तिको अन्धा बना देता है। कहते हैं कि लोचनान्धको नहीं दिखता, परंतु रागान्धको नेत्र होनेपर भी नहीं दिखता (**रागान्धो नैव पश्यति**)। इसका उत्कृष्ट उदाहरण है धृतराष्ट्र। उसे अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधनके दोष नजर ही नहीं आते। पुत्रविषयक रागरूपी रतौंधी (मोतियाबिन्द)-ने धृतराष्ट्रके विवेकरूपी नेत्रोंको हर लिया है। रागमें जो रहे, वह है अग्निबीज। र+आग=राग अर्थात् अग्नि-बीजमन्त्र-विशिष्ट आग ही राग है, जिसमें मन्त्रजन्य दाहकता भी समाविष्ट है।

द्वेषका मतलब है—अकारण ही किसी व्यक्तिके प्रति एकतरफा घृणाका भाव मनमें आना, परिणामतः उसकी हर क्रियामें कमी नजर आने लग जाती है। जिससे द्वेष हो जाता है, उसमें दोष ही दोष नजर आते हैं, गुण दिखते नहीं। इसीलिये कहा है कि **द्वेषान्धो नैव पश्यति।** इसका प्रमुख उदाहरण है शिशुपाल, जिसे श्रीकृष्णमें कोई अच्छाई दिखायी ही नहीं देती। दुर्योधनको पाण्डवोंमें कोई गुण नजर ही नहीं आता। राग-द्वेष एक ऐसी लाइलाज मानसिक बीमारी है, जिसकी दवा दुनियाके किसी चिकित्सकके पास नहीं है और इस रोगसे पीड़ित रोगी हमारे-आपके बीच फैले हुए हैं, किसीको इसकी चिन्ता ही नहीं। कैंसर, मधुमेह (शुगर), हार्ट, ब्रेनकी चर्चा है, चिन्ता है, परंतु जिस महामारीने पूरे विश्वकी मानवीय संवेदनाओंको तहस-नहस करके रख दिया, समग्र मानवजातिकी मानसिक शान्ति तथा आनन्दके उपवनको उजाड़ डाला, भयंकर महायुद्धोंके दावानलमें समग्र विश्वको झोंक डाला, उसका ही नाम है 'राग-द्वेष' और इसकी चिन्ता किसीको नहीं।

भाई! इसका उपचार होनेमें कठिनाई ये है कि रोगीको खबर ही नहीं चलती कि वह राग अथवा द्वेषसे पीड़ित है। यदि उसकी प्रवृत्तियोंसे आहत परिवारके, पड़ोसके, गाँवके अथवा अन्य हितैषी जन उसे समझानेकी कोशिश करते हैं तो वह अधिक नाराज होकर द्रुत गतिसे इस बीमारीको हृदयमें सँजोता जाता है, लोगोंपर आक्षेप करता है कि आप सब मेरी उन्नतिसे जलते हैं। अन्ततः

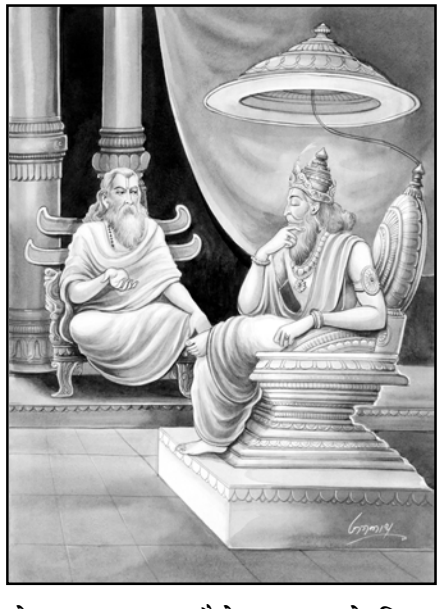

सुबुद्ध लोग समझाकर (जैसे धृतराष्ट्रको विदुर-भीष्म-द्रोण-व्यास-नारदादि समझाकर थक गये थे, परंतु वह स्वीकार ही नहीं करता कि मैं गलत हूँ) थककर अलग

हो जाते हैं, चुप रहकर महाविनाशके ताण्डवको देखते रहते हैं।

रागान्ध अपनोंके दोष नहीं देख पाता। द्वेषान्ध परायोंके गुण नहीं देख पाता। अर्थात् यथार्थ देखने तथा जाननेकी अक्षमता रागद्वेषजन्य है, और इसकी चिकित्सा है सत्संगरूपी दर्पणमें आत्मालोचन—आत्मचिन्तन। स्वयंका स्वयंके द्वारा सूक्ष्म निरीक्षण तथा स्वाध्याय इसकी पहचानका सहज उपाय है। यथा—

प्रथम चरण '**कौन**'— आप एकान्तमें बैठकर सहज भावसे विचार करें कि दुनियामें वह कौन व्यक्ति है, जो मुझे सबसे ज्यादा प्यारा लगता है और वह कौन है, जिसका नाम सुनते ही, चेहरा दिखते ही मन खिन्न हो उठता है। फिर मनमें उन लोगोंको एक तरफ रखो, जो आपको बहुत अच्छे लगते हैं तथा दूसरी तरफ उनको रखो, जो आपको बुरे लगते हैं।

द्वितीय चरण '**क्यों**'—अच्छे लगनेवाले आपको क्यों अच्छे लगते हैं? तथा बुरे लगनेवाले आपको क्यों बुरे लगते हैं? कारण खोजो, सोचो।

तृतीय चरण '**कबसे**'— अब आप थोड़े गम्भीर होकर विचार करो कि जो अच्छे लगते हैं, वे कबसे अच्छे लगने लगे? वह घटना क्या हुई, जिसके कारण आत्मीयता बनी तथा जो बुरे लगते हैं, वे कबसे बुरे लगने लगे? क्या कारण बने।

चतुर्थ चरण '**क्या**'—आओ, आगे बढ़ते हैं, अब ये विचार करना है कि किसी अच्छे लगनेवाले व्यक्तिमें आपको क्या-क्या अच्छा लगता है? चेहरा, आँखें, शरीर, रंग, कोई गुण, गाना, कविता, उसका बोलना या सच्चा व्यवहार। और बुरे लगनेवालेमें आपको क्या-क्या बुरा लगता है? रूप, रंग, जाति, दुर्गुण, झूठ, गन्दी भाषा, रूखा व्यवहार आदि। सोचिये, क्या ये गुण या दोष हमेशा रहेंगे? नहीं न, तो फिर क्यों खुदको बाँधे हो?

पंचम चरण '**सचकी ओर**'—अब विचार करो कि जो हमारे अपने हैं, उनमें कोई दोष नहीं है? कोई बुराई नहीं है? अथवा जिनको हमने विरोधी माना है, क्या उनमें कोई अच्छाई नहीं है? कोई गुण नहीं है? यदि अच्छाई-बुराई है तो उनको भी समझें कि अपनोंमें क्या दुर्गुण हैं तथा परायोंमें क्या सद्गुण हैं?

षष्ठ चरण '**सचके करीब**'—विरोधियोंकी अच्छाईका विचार करो, उसकी समाजमें चर्चा करो, बुराईकी उपेक्षा करो तथा अपनोंकी बुराईका विचार करो, उसको एकान्तमें बुलाकर समझाओ, मगर ध्यान देना—अच्छाईकी चर्चा समाजमें करना, परंतु बुराईको अकेलेमें ही बताना। कोई आपसे पूछे भाई! इतना झमेला क्यों करें दूसरोंके लिये? व्यर्थ समय बर्बाद करनेसे क्या? भाई! ये समय दूसरोंके लिये नहीं है, यह तो अपने मनको लगी बीमारीकी दवा चल रही है, देखना बहुत कम समयमें आपके मनसे राग-द्वेषकी बीमारी खत्म हो जायगी। आप सचको देख पायेंगे तथा समझ पायेंगे। परिणामतः आपको निःसीम शान्ति तथा आनन्दकी प्राप्ति होगी। आपको अनावश्यक किसीसे न तो आसक्ति होगी, न ही घृणा होगी।

आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें राग-द्वेष ही महाबाधक है। आपको संसारमें किसी भी नाशवान् व्यक्ति, वस्तु, स्थान, पदार्थसे राग हो गया तो अविनाशी ब्रह्मसे आपका चित्त हट जायगा। आपको किसीसे द्वेष हो गया तो भी चित्तका विकार खिन्नता देगा, फलतः आपकी प्रसन्नता चली जायगी। आप ब्रह्म-चिन्तनसे विरत हो जाओगे। अतः न तो किसीसे राग करो, न ही द्वेष। संसारको स्वप्नकी तरह अथवा फिल्मकी तरह देखो। ये राग-द्वेष जीवनको विषम बनाते हैं, जबकि समतामय जीवन ही सत्य जीवन है, योगयुक्त जीवन है—**समत्वं योग उच्यते।** रागसे प्रेरित होकर किसीकी प्रशंसा न करे तथा द्वेषसे प्रेरित होकर किसीकी निन्दा न करे, यह आदर्श जीवनका सार है एवं सुखी तथा आनन्दमय जीवनकी कुंजी है।

महामारी और हमारी स्वास्थ्य-रक्षक सेना

(श्रीहनुमानप्रसादजी गोयल)

[आजकल कोरोना वायरसके संक्रमणने पूरे विश्वको भयाक्रान्त कर दिया है। इस महामारीकी कोई सटीक औषधि आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान अभीतक नहीं खोज पाया है। इस वायरससे रक्षाके लिये अभी कुछ रक्षात्मक उपायोंका ही सहारा लिया जा रहा है, यथा—१-संक्रमित व्यक्ति और वस्तुओंसे दूर रहें। २-सफाईका बहुत ध्यान रखें, ३-हाथोंको बार-बार साबुनसे धोयें। ४-अनावश्यक आवागमन एवं स्पर्शसे बचें। ५-जीवनीशक्ति-वर्धक पदार्थोंका सेवन एवं स्वास्थ्यपरक दिनचर्याका पालन करें। ६-यदि श्वास लेनेमें तकलीफ, खराश, खाँसी, जुकाम, बुखार इत्यादि लक्षण हों तो तत्काल चिकित्सकको दिखायें इत्यादि।

वस्तुतः यह बीमारी प्रकृतिके प्रतिकूल जीवन-शैलीके वरण एवं मांस आदि अभक्ष्य पदार्थोंके भक्षणके फलस्वरूप विदेशोंसे उत्पन्न हुई है। संयमित जीवन-शैली एवं स्वच्छताके नियमोंका पालनकर हम इस महामारीके प्रकोपसे बच सकते हैं। विश्वमें इसके पूर्व भी प्लेग, चेचक, हैजा इत्यादि महामारियाँ अपना विकराल रूप दिखा चुकी हैं, जिनपर कालान्तरमें चिकित्साशास्त्रियोंने विजय पा ली।

पहले भी एक बार महामारीकी विषम परिस्थिति उत्पन्न होनेपर पिता-पुत्र-संवादकी शैलीमें श्रीहनुमानप्रसादजी गोयलका एक लेख कल्याणमें प्रकाशित हुआ था, जिसमें महामारीके स्वरूप और स्वास्थ्यरक्षक दिनचर्याके विषयमें सुबोध ढंगसे सुन्दर प्रकाश डाला गया था। वर्तमान परिस्थितियोंमें इस लेखकी प्रासंगिकता देखते हुए इसे कल्याणके पाठकोंके लिये पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।—**सम्पादक***]*

केशव—पिताजी! माताजीको बुखार आ गया है। चारपाईपर पड़ी हैं।

पिता—बुखार न आये तो क्या हो। इतनी बार उन्हें समझा चुका, वह अपने स्वास्थ्यपर ध्यान देतीं ही नहीं।

केशव—स्वास्थ्य किसे कहते हैं? पिताजी!

पिता—जब हमारे शरीरके हर एक कल-पुर्जे अपना-अपना काम ठीक ढंगसे करते रहते हैं, तब उस अवस्थाको हम स्वास्थ्य कहते हैं। जब वे अपना काम ठीक ढंगसे नहीं करते या उनमें कोई खराबी पैदा हो जाती है, तब उसे हम रोग या बीमारीके नामसे पुकारते हैं।

केशव—पिताजी! बीमारी कैसे पैदा होती है?

पिता—बीमारियाँ बहुत तरहकी होती हैं और उनके पैदा होनेके कारण भी बहुतेरे हैं; किंतु मोटे तौरसे हम कह सकते हैं कि कुछ बीमारियाँ तो ऐसी हैं, जो खान-पान या रहन-सहनकी खराबियोंसे पैदा हो जाती हैं—जैसे अपच, मन्दाग्नि, वात, गठिया, सिरका दर्द, पेटका दर्द, कब्जियत इत्यादि; और कुछ ऐसी हैं, जो छुतही हैं अर्थात् छूतसे पैदा होती हैं—जैसे प्लेग, हैजा, चेचक, सर्दी-जुकाम, इन्फ्लुएंजा, क्षय इत्यादि।

केशव—ये छूतकी बीमारियाँ किस तरह पैदा होती हैं?

पिता—छूतसे पैदा होनेवाली बीमारियाँ वास्तवमें छोटे-छोटे कीड़ोंसे उपजती हैं। ये कीड़े इतने छोटे होते हैं कि साधारण आँखोंसे दिखायी नहीं देते। इसीसे इन्हें कीटाणु कहकर पुकारते हैं। इन्हें देखनेके लिये एक ऐसे यन्त्रकी आवश्यकता होती है, जो छोटी-छोटी चीजोंको बड़ा करके दिखा दे।

केशव—वह यन्त्र कौन-सा है?

पिता—उस यन्त्रको अणुवीक्षणयन्त्र कहते हैं। उसके द्वारा हम छोटी-से-छोटी वस्तुको भी बिलकुल आसानीके साथ देख सकते हैं। ये यन्त्र कई प्रकारके होते हैं—कोई कम शक्तिका और कोई ज्यादा शक्तिका। जो यन्त्र जितनी ही ज्यादा शक्तिका होगा, उससे उतनी ही बारीक चीज देखी जा सकेगी। रोगके कीटाणुओंको देखनेके लिये बहुत तेज शक्तिके यन्त्रोंकी जरूरत हुआ करती है; क्योंकि ये कीटाणु बहुत ही सूक्ष्म होते हैं।

केशव—अच्छा, तो ये कीटाणु होते कैसे हैं?

पिता—ये कीटाणु अनेक प्रकारके होते हैं, किंतु अधिकतर ये तीन ही रूपोंमें दिखायी दिया करते हैं—

(१) [१]पहियेकी तरह गोल आकारमें, (२) [२]डंडीकी तरह लंबे और (३) [३]लहरियेदार या उमेठनदार शकलमें। इनकी बहुत-सी जातियाँ हैं और उनके रूप-रंग और स्वभावके अनुसार अलग-अलग नाम भी हैं; किंतु तुम्हें उस झगड़ेमें पड़नेकी जरूरत नहीं। केवल इतना ही समझ लो कि जितने भी प्रकारके छुतहे रोग होते हैं—अर्थात् सर्दी और जुकाम-जैसे साधारण रोगोंसे लेकर क्षय, चेचक, हैजा और प्लेग-जैसे भयंकर रोगोंतक—सबकी उत्पत्तिके लिये अलग-अलग जातिके कीटाणु हुआ करते हैं।

केशव—लेकिन इन कीटाणुओंसे कैसे रोग होता है?

पिता—बात यह है कि इन कीटाणुओंमें अपनी संख्याको बढ़ानेकी बड़ी विचित्र शक्ति हुआ करती है। हर एक कीटाणु अपने शरीरको बढ़ाकर दो टुकड़े कर देता है, जिससे एककी जगह दो कीटाणु बन जाते हैं। इस प्रकार क्षणभरमें ही इनकी संख्या दुगुनी हो जाती है। हमारे शरीरमें यदि इनमेंसे एक भी कीटाणु किसी तरह प्रवेश कर पाये और उसकी बाढ़के लिये परिस्थिति बिलकुल अनुकूल हो तो उससे इसी तरह एकसे दो, दोसे चार और चारसे आठ होते हुए कुछ ही समयमें करोड़ों कीटाणु पैदा हो जायँगे और हमारे शरीरके अन्दर उनकी एक भारी बस्ती तैयार हो जायगी।

केशव—तब उससे क्या होगा?

पिता—बस, फिर वे तमाम कीटाणु हमारे खूनके साथ मिलकर सारे शरीरमें चक्कर लगाने लगेंगे और खूनमें अपना जहर भरकर हमारे शरीरमें पेंचीले और सुकुमार पुर्जोंमें तरह-तरहकी खराबियाँ पैदा कर देंगे, जिससे हम बीमार पड़ जायँगे।

केशव—लेकिन पिताजी! ये रोगके कीटाणु हमारे शरीरमें पहुँच कैसे जाते हैं?

पिता—इनकी पहुँच हमारे शरीरमें अनेक प्रकारसे हो सकती है। कुछ तो हवामें उड़कर साँसके साथ आ जाते हैं; कुछ दूध, जल या भोजनके साथ मिलकर अन्दर पहुँच जाते हैं और कुछ रोगी मनुष्यके पहने हुए वस्त्रोंसे चिपककर एकके पाससे दूसरेके पास जा पहुँचते हैं। कुछ कीटाणु ऐसे भी हैं, जो किसी खास किस्मके जानवरके काटनेसे ही हमारे खूनमें पहुँच जाते हैं।

केशव—तब इनसे बचनेका उपाय क्या है?

पिता—इनसे बचनेका सबसे बड़ा उपाय तो उस परम पिता परमात्माने ही हमारे शरीरके भीतर कर रखा है। उसने हमारे अन्दर करोड़ों सिपाहियोंकी एक ऐसी सेना पैदा कर दी है, जो हर समय हमारे शरीरकी रखवाली किया करती है और शरीरके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक दिन-रात चक्कर लगा-लगाकर पहरा दिया करती है। जहाँ कोई शत्रु हमारे भीतर घुसा कि इस सेनाके बहुत-से सिपाही झट उसपर टूट पड़ते हैं और उसे मार-मारकर बाहर निकालनेकी चेष्टामें लग जाते हैं।

केशव—ओहो! ये सिपाही कौन हैं?

पिता—ये हमारे खूनके सफेद कण हैं। हमारे खूनमें दो प्रकारके अत्यन्त नन्हें-नन्हें जीवाणु पाये जाते हैं—एक लाल और दूसरे सफेद। इनकी शकल पहियोंकी तरह घेरेदार हुआ करती है। ये हमारे खूनके जीवित कण हैं और खूनके साथ-साथ सारे शरीरमें चक्कर लगाया करते हैं। इनमेंसे लाल कणोंका काम शरीरके तमाम अंगोंको भोजन ढो-ढोकर पहुँचाना है और सफेद कणोंका काम शरीरकी रक्षा करना है। बहुत छोटे होनेके कारण आँखोंसे ये नहीं दिखायी देते, किंतु अणुवीक्षणयन्त्रकी सहायतासे हम इन्हें जब चाहें देख सकते हैं। जिस समय किसी रोगके कीटाणु हमारे खूनमें पहुँचते हैं तो ये सफेद कण हमारी रक्षाके लिये उनसे बड़ी तत्परताके साथ जा भिड़ते हैं और फिर कुछ समयतक उन दोनोंमें एक खासी कुश्ती होती रहती है। यदि हमारे सफेद कण रोगके कीटाणुओंसे शक्ति और संख्यामें बलवान् हुए तो वे इन्हें तुरंत नष्ट कर डालते हैं या कम-से-कम इनकी बाढ़को ही रोक रखते हैं, जिससे हमारे शरीरको किसी तरहकी हानि नहीं पहुँचने पाती। वास्तवमें यह भी नहीं मालूम

१- Coccus २- Bacillus ३- Spirilum

होता कि हमारे शरीरमें किसी रोगके कीटाणुओंने प्रवेश भी किया था या नहीं, किंतु यदि हमारे सफेद कण इनसे कमजोर पड़े तो फिर वे स्वयं नष्ट होने लगते हैं और रोगके कीटाणु तेजीके साथ बढ़कर सारे शरीरपर अपना अधिकार जमा लेते हैं, जिससे हम बीमार पड़ जाते हैं।

केशव—ये बातें सुननेमें बड़ी अद्‌भुत जान पड़ती हैं।

पिता—हाँ, लेकिन हैं ये बिलकुल सच! हम बहुधा देखते हैं कि कोई आदमी तो छुतहे रोगीके पास दिन-रात सोता-बैठता है और उसकी सेवा किया करता है, लेकिन फिर भी बीमार नहीं पड़ता और कोई केवल दस-पाँच मिनटके लिये वहाँ रोगीका हाल-चाल देखने आता है और घर पहुँचते ही बीमार पड़ जाता है। इसका कारण क्या है? रोगके छुतहे कीटाणु तो दोनोंहीके शरीरमें प्रवेश करते हैं, किन्तु पहला आदमी बीमार नहीं पड़ता; क्योंकि उसके खूनमें सफेद कण रोगके कीटाणुओंसे अधिक बलवान् हैं और इसलिये उन्हें रोक रखते हैं। दूसरा आदमी बीमार पड़ जाता है; क्योंकि उसके खूनमें सफेद कण उतने मजबूत नहीं हैं और उन कीटाणुओंको दबा नहीं सकते।

केशव—तब इन सफेद कणोंको बलवान् बनानेका उपाय क्या है?

पिता—इन्हें बलवान् बनानेका सबसे सुन्दर और सीधा उपाय यह है कि हम बराबर ऐसे नियमोंका पालन करते रहें, जिनसे हमारे शरीरका बल और उनकी शक्ति बराबर बढ़ती जाय। इसके लिये सबसे पहले हमें अपने खान-पान और रहन-सहनको ठीक रास्तेपर रखना होगा।

केशव—खान-पान हमें कैसा रखना चाहिये?

पिता—खान-पानका सवाल हमारे शरीरमें और स्वास्थ्यके लिये बड़े महत्त्वका है। तुम जानते हो कि जो कुछ तुम खाते हो उसीसे तुम्हारा खून बनता है, उसीसे तुम्हारा बल बढ़ता है और उसीसे तुम्हारा शरीर भी बड़ा होता है। जन्मके समय तुम्हारा शरीर कैसा नन्हा-सा था, किंतु आज यह इतना बड़ा हो गया। उस समय तुम उठकर बैठ भी नहीं सकते थे, परन्तु आज तुम उछल-कूदकर छलाँग मार सकते हो। अब तुम्हीं सोचो कि यह ऐसा शरीर और इतना बल तुमने कहाँसे पाया। भोजनसे ही न? अस्तु, हम क्या खायँ और कैसे खायँ, इस विषयमें हमें सदैव सावधान रहना चाहिये। अवसर मिलनेपर किसी दिन इसकी बावत हम तुम्हें अधिक विस्तारसे समझायेंगे। अभी केवल इतना ही समझ लो कि हमारे खाने-पीनेकी चीजें सदा ऐसी होनी चाहिये, जो बल और स्वास्थ्यको बढ़ानेवाली हों और आसानीसे पच सकें।

केशव—ये चीजें कौन-सी हैं?

पिता—ताजे फल, दूध, मक्खन और मेवोंका स्थान—इस विचारसे सबसे ऊँचा है। इनके बाद रोटी, दाल, भात, तरकारी, शाक और घीका नंबर आता है। पूड़ी, मिठाई, पकवान, चाट और दही-बड़े आदिका नंबर तो बहुत नीचे है, क्योंकि ये चीजें अधिक देरमें पचती हैं और शरीरकी अपेक्षा केवल जीभको ही ज्यादा सुख देनेवाली हैं। किंतु ध्यान रहे कि उत्तम भोजन भी जरूरतसे ज्यादा या बेवक्त खा लेनेसे विषके समान हो जाता है। साथ ही जो भोजन खूब चबाकर नहीं खाया जाता, वह भी पेटके लिये बोझ बन जाता है। सड़ा, गला, बासी या देरका रखा हुआ भोजन भी हर्गिज नहीं खाना चाहिये। ऐसा भोजन तामसी कहा गया है और शरीरके साथ-साथ हमारी बुद्धिको भी भ्रष्ट कर देता है।

केशव—मैं इन बातोंपर ध्यान रखूँगा।

पिता—हाँ, और साथ ही हमें अपने रहन-सहनपर भी ध्यान रखना होगा।

केशव—वह क्या?

पिता—वह है मुख्यतः सफाई और सदाचार। ये दोनों ही बातें स्वास्थ्य-दृष्टिसे भोजनसे कम महत्त्व नहीं रखतीं। सफाईके अन्दर भोजनकी सफाई, पानीकी सफाई, हवाकी सफाई, शरीरकी सफाई, वस्त्रोंकी सफाई, घर-द्वारकी सफाई और पास-पड़ोसकी भी सफाई शामिल है। इनके अतिरिक्त मन, स्वभाव और चरित्रकी स्वच्छता भी सदाचारके अन्दर आ जाती है। इस प्रकार अपने रहन-सहनमें हमें सब प्रकारकी सफाई और

निर्मलता लानेकी जरूरत है। याद रहे कि जितने भी प्रकारके रोग और रोगके कीटाणु हैं, सब गन्दगीमें ही पनपते हैं। सफाई और प्रकाशमें उनकी बाढ़ और शक्ति क्षीण होती है। साथ ही सफाई और प्रकाश हमारे खूनके कणोंको बल देते हैं। इससे हममें रोगोंको रोकनेकी शक्ति आती है। इस प्रकार सफाई हमारी दो तरहसे सहायक है। एक ओर तो वह हमारी शक्तिको बढ़ाती है और दूसरी ओर वह हमारे शत्रुओंकी शक्तिको क्षीण करती है। अतएव इसका साथ हमें जीवनपर्यन्त छोड़ना उचित नहीं।

केशव—परन्तु पिताजी! मन और चरित्रकी सफाईमें स्वास्थ्यका क्या सम्बन्ध है?

पिता—देखो, जिस प्रकार बाहरी सफाईसे शरीरको शक्ति मिलती है, उसी प्रकार मन और चरित्रकी स्वच्छतासे मनको भी शक्ति प्राप्त होती है। मन है शरीरका राजा। उसीके कहनेपर शरीर चलता है। अतएव यदि मन कमजोर हुआ तो फिर शरीरपर वह अपना काबू नहीं रख सकता और न उससे स्वास्थ्यके नियमोंका ठीक-ठीक पालन ही करा सकता है। तुमने सुना होगा कि यूरोपमें कितने चिकित्सक रोगीको केवल यह विश्वास दिलाकर अच्छा कर देते हैं कि तुम अब अच्छे हो। जिस रोगीके मनमें जितना यह विश्वास जम जाता है, उतना ही जल्दी वह अच्छा भी हो जाता है। कहनेका मतलब यह कि शरीरका मनके साथ बहुत ही घना सम्बन्ध है। अतएव शरीरके स्वास्थ्यके लिये मनकी शक्ति, जिसे हम इच्छा-शक्ति भी कहते हैं, बहुत आवश्यक है; और यह शक्ति उन लोगोंको आसानीसे प्राप्त हो जाती है, जिनका मन निर्मल है और जो चरित्रवान् हैं।

केशव—तो मन और चरित्रको निर्मल रखनेके लिये उपाय क्या है?

पिता—इसका सबसे सीधा उपाय यह है कि बुरे और गंदे विचारवाले लोगोंकी संगतसे बचो, पवित्र और ऊँचे विचारवाले लोगोंका सत्संग करो, बुद्धि और ज्ञानको बढ़ानेवाली पुस्तकें पढ़ो और अपने मनमें हर एक बातपर स्वतन्त्ररूपसे सोचनेकी आदत डालो। जब कभी तुम्हारा मन भटककर किसी बुरे रास्तेपर जाना चाहे तो उसे पूरी शक्तिसे रोको और उसके परिणामोंपर विचार करो। साथ ही ईश्वरसे प्रार्थना करो कि वह तुम्हारे मनको इतनी शक्ति दे कि तमाम बुरे विचारोंसे तुम अपनेको दूर रख सको।

केशव—मैं अवश्य ऐसा ही करूँगा। आज मैंने कितनी ही नयी बातें सीखीं। मैं इन सबोंको ध्यानमें रखूँगा।

पिता—यदि आजकी बतायी हुई तमाम बातोंको तुम ध्यानमें रखोगे और उनके अनुसार चलनेकी चेष्टा करोगे तो ईश्वर अवश्य तुम्हारा कल्याण करेगा और शारीरिक स्वास्थ्यके साथ-साथ मनका स्वास्थ्य और शक्ति भी तुम लाभ करोगे।

भगवान् शिवकी शरणागतिसे परम कल्याणकी प्राप्ति

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता।
संसारहेतुरपि यः पुनरन्तकालस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥
यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः।
ध्यायन्ति चाखिलधियोऽमितदिव्यमूर्तिं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

'जो इस सम्पूर्ण चराचर-जगत्के कर्ता और इसे अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार सुख-दुःख देनेवाले हैं, जो संसारकी उत्पत्तिके हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देनेवाले उन्हीं भगवान् शङ्करकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, वे योगीजन, भक्तिसे मनको एकाग्र रखनेवाले निष्काम भक्त तथा अपरिच्छिन्न बुद्धिवाले ज्ञानी भी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन अनन्त दिव्यस्वरूप शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ।'

तीर्थ-दर्शन—

'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु'

(डॉ० श्रीअनुजप्रतापसिंहजी, डी०लिट०)

मैं चित्रकूट वर्षमें एकबार अवश्य जाता हूँ, पर जब भी जाता हूँ, तो कोई नयी वस्तु अवश्य दिखायी पड़ती है, इसके साथ ही अनेक रहस्य भी उद्घाटित होते हैं। चित्रकूटकी महिमा पुराणों और रामकथासे सम्बन्धित ग्रन्थोंमें विशेष रूपसे गायी गयी है, सबकी उद्धरणी बहुत लम्बी होगी। त्रेतायुगमें रामने वनवासके मध्य जब इसपर लगभग साढ़े दस वर्षतक निवास किया तो इसकी महत्ता विश्वविदित हो गयी। आज भी कहीं कोई न्यूनता नहीं है। इसके विविध आकर्षण बने हुए हैं।

इसका अमर इतिहास है। देशकी सभी भाषाओंमें रचित रामायण ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा है। इतिहास और भारतीय भूगोल तथा पुरातत्त्वसम्बन्धी ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा है। यह रामके संकटका साथी रहा है, जो संकटका साथी रहता है, वह कभी नहीं भूलता है, कृतघ्नी चरित्रोंकी बात दूसरी है। जब सभी वैभवसे पूर्ण पैतृक राजधानी अयोध्या, वहाँके प्राणी, सरयूनदी, भरा-पूरा परिवार यहाँतक कि पिता और विमाताने साथ नहीं दिया। ज्योतिषविद्याने साथ नहीं दिया, तब साथ दिया चित्रकूटने। गुरु वसिष्ठ तथा अन्य ज्योतिषियोंने जो शुभ मुहूर्त राजतिलकके लिये सुनिश्चित किया था—वही गृह-त्यागका हो गया। नियतिको कोई नहीं जानता है। वसिष्ठजीने कुण्डली बनायी थी, उसमें इस प्रकारकी कोई विसंगति नहीं थी। पूरी अयोध्या हतप्रभ हो गयी। वनवासके विविध प्रारूप बनने लगे—(१) सुमन्तजी वनका भ्रमण कराकर रामको वापस अयोध्या ले आयेंगे। (२) वनमें एक महल बनाया जाय, जिसमें राम १४ वर्षतक निवास कर अयोध्या आयेंगे।

इसी मध्य महारानी कैकेयी ने घोषणा कर दी कि वल्कल वस्त्रोंमें, उदासीनताके साथ १४ वर्षतक राम वनवास करेंगे। राम-वनवासकी घोषणाके उपरान्त यह दूसरी दुर्घटना वनवासके स्वरूपको लेकर हो गयी।

अगले क्षणमें कुलवधू सीताजी और भाई लक्ष्मणने रामसे साथ-साथ चलनेके लिये कहा। रामने समझाया कि वनवास तो केवल मुझको मिला है। सीताजीको माताओंने भी वन न जानेके लिये समझाया, पर उन्होंने अपना धर्म बताकर सबको मौन कर दिया। कुछ लोगोंने उनको मिथिला (मायके) चले जानेकी राय भी दी। लक्ष्मणजीने इसको अपना कर्तव्य बताया, सेवा-धर्म और रक्षाधर्म बताया। अन्ततः पातिव्रत और बन्धुधर्मकी विजय हुई। इसी क्षण कैकेयीने तीनों लोगोंके लिये तीन वल्कल वस्त्र लाकर दे दिये और कहा कि इनको पहनो और जंगलको जाओ। पूरा जनसमूह जड़-सा हो गया।

राम, लक्ष्मण और सीता वल्कलको धारणकर अवध राजभवनसे बाहर हो गये। सुमन्तजी रथपर बैठाकर जब सबको जंगल ले जाने लगे तो जनमानस आगे लेट गया, रामने सहजभावसे सबसे कहा—माता-पिताकी आज्ञा है, उसको मैं टाल नहीं सकता हूँ। आपलोग मेरा सहयोग कीजिये, भीड़ पीछे हो गयी।

रामका रथ चला, जनसमूह उसके साथ चला। प्रथम रात्रिनिवास तमसा नदीके तटपर हुआ। यह स्थान फैजाबाद-सुलतानपुरके बीच है। प्रातः रथके साथ जनसमूह अयोध्या लौट जाता है, रामके आग्रहसे। राम दक्षिण दिशाकी ओर आगे बढ़ते हैं। रास्तेमें उनसे लोग मिलते हैं, वे तरह-तरहके प्रश्न करते हैं, राम एक ही उत्तर सबको देते हैं—'मैं पिताके वचनको मानकर वन आया हूँ।' वे कहीं उद्विग्न नहीं होते हैं। सुमन्तजीको शान्तिपूर्वक विदा करते हुए भी उन्होंने कहा—पिताजीसे कह दीजियेगा कि दुखी न हों, मैं चौदह वर्षोंके उपरान्त अयोध्या लौटकर आ जाऊँगा, पर लक्ष्मणने स्वभावतः कुछ कड़ा संदेश दिया और रामको शान्ति-सन्देशसे रोका भी था।

दशरथजी तीनोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्होंने रिक्त रथको लेकर आये हुए सुमन्तजीको देखा तो नैराश्य, बेचैनी और आत्मग्लानिमें डूब गये। सुमन्तजीके निकट आनेपर उन्होंने पूछा—वे लोग लौटे नहीं? सुमन्तजीने कहा—नहीं, मैंने विनय तो बहुत की। दशरथजीने पूछा—

आते समय उन लोगोंने कुछ कहा? सुमन्तजी बोले—हाँ, रामने कहा कि पिताजीसे कह दीजियेगा कि वे स्वस्थ और प्रसन्न रहें, हमलोग जंगलमें रह लेंगे और चौदह वर्ष उपरान्त लौटकर उनसे मिलेंगे, इसके उपरान्त लक्ष्मणने उत्तेजित होकर कहा—रहने दीजिये, उस पिताको क्या सन्देश देते हैं, जिसने बिना सोचे-विचारे किसीके कहनेपर जंगलमें भेज दिया। दशरथजीको असह्य आत्मपीड़ा होने लगी। पीड़ा इस बातकी हुई कि जिसको मैंने वनवास दिया, उसने तो आत्मीयतासे पूर्ण सन्देश दिया और जिसको मैंने वनवास नहीं दिया—जो अपने मनसे गया, उसने कटु वचन कहा। मैं कितना पापी हूँ कि ऐसे शीलगुणी रामको वनवास दे दिया। यही शीलका फूटना है। जब क्रोध फूटता है, तो उसका समाधान हो जाता है, परंतु जब शील फूटता है, तो उसका समाधान नहीं होता है। रामका शील यहाँ फूटता है। राजा दशरथ उद्वेलित होते हैं, पश्चात्ताप करते हैं। वे बार-बार अपराधबोधसे ग्रसित होते हैं, सोचते हैं कि मैं कितना बड़ा अपराधी हूँ कि राम-जैसे शीलवान्, धैर्यशाली पुत्रको वनवास दे दिया। दशरथजीकी मृत्युमें यह पश्चात्ताप सहायक सिद्ध हुआ।

राम धोपाप (सुलतानपुरके आगे)-में स्नान-पूजा करके प्रयागकी ओर बढ़ते हैं। भरद्वाज-आश्रममें वे भरद्वाजजीसे अपने निवासके लिये स्थान पूछते हैं, तो वे दार्शनिक उत्तर देते हैं कि आप कहाँ नहीं हैं? फिर वे चित्रकूटके कामदगिरिपर ठहरनेकी सलाह देते हैं। राम विन्ध्यभूमिकी ओर बढ़ते हैं। इसी अन्तरालमें पिताजीकी मृत्युकी सूचना मिलती है। विन्ध्याचल (वर्तमान) और मीरजापुरके मध्य वे गंगा पार करके स्नान-पूजा और बालूका पिण्ड बनाकर पिण्डदान करते हैं। सीताजी गंगाकी धाराके किनारे अयोध्याकी ओर मुख करके दोनों हाथोंको जोड़कर वर माँगती हैं कि—'हे गंगा माँ! हम तीनों सकुशल लौटें।' वह स्थान 'राम-गया' कहा जाता है। आज भी लोग वहाँ बालूका पिण्डदान करते हैं, शवदाह करते हैं।

आगे वे लोग अष्टभुजापर रुकते हैं, सीताजी भोजन बनाती हैं। वहाँ सीता-रसोई और सीताकुण्ड नामके स्थान हैं। वहाँ उन्होंने भोजन करके विश्राम किया था। वहाँसे वे लोग वाल्मीकि-आश्रम गये। वाल्मीकि-आश्रमसे चित्रकूट ३० किलोमीटरकी दूरीपर है। महर्षि वाल्मीकिसे परामर्श करके वे लोग चित्रकूट पहुँचे थे और वहाँ कामदगिरिको उन्होंने अपना प्रवास-स्थल बनाया। कामदगिरितक बड़ा-सा पहाड़का टिल्ला है, जिसके ऊपर समतल है। दो छेद हैं, जिनमें चिमटे-जैसे लोहे फँसे हैं। हो सकता है, इन्हींमें दोनों लोग धनुषको खड़ा करके रखते रहे हों। वनवासके बारहवें वर्षतक लोग यहीं रहे। दस वर्ष छः माहतक यहाँ रहनेका उल्लेख है।

अब मैं अयोध्यासे चित्रकूटकी यात्राका वर्णन करता हूँ। यह यात्रा तीनों लोगोंने नंगे पैर चलते, कन्दमूल खाते और कुश-काथरीपर सोते हुए की थी। अलंकार और आध्यात्मिक पुटमें चाहे जो कहा जाय, पर रामको वनवासमें दुखोंके चरमोत्कर्ष मिलते हैं। आज भी उक्त मार्गपर नंगे पैर चलनेमें अपार कष्ट होता है। विचित्र कंकड़-पत्थर, उतार-चढ़ाव, काँटे, गुरुखुल हैं। राम गाँव और नगरोंमें नहीं जाते थे। निषाद उनको अपना सबकुछ दे रहा था। किष्किन्धाके राजभवनमें वे रह सकते थे। गाँवके किसी निवासीके यहाँ जा सकते थे, पर वे आद्योपान्त शुद्ध वनवासी ही बने रहे।

चित्रकूट, रामनिवास और कामदगिरिका वर्णन वाल्मीकि-रामायण, पुराण, काव्य, नाटक और स्फुट साहित्यमें है। इसका स्वस्थ, पावन इतिहास और भूगोल है। राम-लक्ष्मण और सीताका आश्रयदाता है न। आज भी वहाँके लोग बताते हैं कि रातको दो व्यक्ति एक स्त्रीके साथ घूमते हुए दृष्टिगत होते हैं। उनसे सम्बन्धित कुछ घटनाएँ भी घटती रहती हैं। आज भी लोग इसके सर्वोच्च समतल भागपर यदि चले जाते हैं तो मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं। महाकवि निराला भी लगभग ऊपरतक पहुँच गये थे, तबसे वे असंतुलित रहने लगे थे। उनसे भी दो व्यक्ति मिले थे। मेरे मित्र भी वहीं जा रहे थे। उनके गाँवके चार लोग भी साथमें थे, वे आधी

चढ़ाईसे उतर आये। मित्र आचार्यजीसे उन लोगोंने कहा कि हमलोग यहीं बैठे हैं, आप ऊपर जाइये। वे जब ऊपर गये तो उनसे दो लोग मिले, उन लोगोंने पूछा—तुम यहाँ क्यों चले आये? आचार्यजीने कहा—ऊपर जाना है, प्यास लगी है। पहाड़के भीतरसे पानी निकल रहा था। उसकी धारामें किसीने पाइप लगा दी थी तो पानीकी धारा उपयोगके लिये सुलभ हो गयी थी। सामनेके दोनों लोगोंने कहा—यह पानी रिस रहा है, पी लो। वे अँजुरीसे पानी पीने लगे। पानी पीनेके उपरान्त जब उन्होंने देखा तो वे दोनों व्यक्ति न थे। आचार्यजी पासके पत्थरके आसनपर बैठकर उन दोनोंके सम्बन्धमें सोचने लगे, भयभीत भी हुए, रोंगटे खड़े हो गये, फिर अचेत हो गये। नीचे बैठे हुए गाँवके लोग सायंतक उनकी प्रतीक्षा करके गाँव चले आये। आचार्यजीकी चेतना जब दूसरे दिन लौटी, तो वे गाँव गये। तबसे वे असाधारण रहने लगे, असीमित वार्ता करते, बारह बजे रातके बाद सोते। गाँवके पासके शहरमें वे सामान लेने गये, तो रिश्तेदारीमें चले गये और तीन माह उपरान्त वापस आये। वे विश्वविद्यालयमें संस्कृत विभागाध्यक्ष थे। उन्होंने किसी तरह नौकरी पूरी की। वे संस्कृतके अच्छे कवि और वक्ता हैं। वे लगभग हर बार चित्रकूट रामायण मेला में आते हैं। एक वर्ष वे मेरे पासके कमरेमें रुके थे। आचार्यजीकी मानसिक स्थितिको देखते हुए उनकी पत्नी अब प्राय: साथमें रहती हैं।

यहाँ अन्य लोगोंको भी कभी दो पुरुष धनुष-बाण लिये, नंगे पाँव, नंगे वदन एक स्त्रीके साथ रातमें दिखायी पड़ते हैं।

चित्रकूटकी महासभा, जिसमें अयोध्या और मिथिलाका समाज रहा, उसका बड़ा महत्त्व है। भरत-रामका मिलन तो अद्‌भुत और अद्वितीय रहा; **न भूतो न भविष्यति।** मुनियोंकी मति भी अबला-सी हो जाती है। रामराज्यकी स्थापना चित्रकूटमें हुई। उस प्रारूपको भरतजीने अवधमें क्रियान्वित किया। जब राम अवधमें वापस गये तो उसीको आगे बढ़ाते रहे। चौदह वर्षतक रामके खड़ाऊँने राज्य किया, यह भरतजीकी देन है। राज्यका कहीं लोभ, गर्व या दिखावा नहीं, निष्काम कर्मयोगी वे बने रहे।

चित्रकूटके कामदगिरिपर जहाँ सभा हुई थी, वह स्थल पूर्ण सुरक्षित है। राम-भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न, वसिष्ठ और जनकके स्थल सबसे मार्मिक हैं। जहाँ माताएँ बैठीं थीं, उन्हींके आसपास सीताजी भी बैठी थीं। जहाँ कौसल्या और सुमित्रा बैठी थीं। वहाँका पत्थर घिसठ गया और आज भी उक्त स्थानोंपर कड़ाहीके आकारके गड्ढे हैं। जहाँ कैकेयी बैठी थी—वहाँका पत्थर फट गया था। सभी चिह्न घेरेके भीतर सुरक्षित हैं,लोग कहते हैं कि कैकेयीका हृदय इतना कठोर था कि जहाँ वह बैठती थी तो वह स्थान (धरती-पत्थर) फट जाता था। यह पूर्ण सत्य न हो तो कुछ तो होगा ही, नहीं तो भुलक्कड़ संसार अबतक भूल गया होता।

वाल्मीकि-रामायणमें चित्रकूट-प्रसंग अति विस्तारसे है। तुलसीदासको चित्रकूटमें ही राम-लक्ष्मणके दर्शन हुए थे। हनुमान्‌जीका निर्देश मिला था। तुलसीदास चन्दन घिस रहे थे और रघुवीर अपने मस्तकपर चन्दन लगा रहे थे। तुलसीदासजीने चित्रकूटको ***'चतुर अहेरी'*** कहा है—जो सभी विकारों, पापोंको दूर करके मनोकामनाकी पूर्ति करता है। यह सिद्धपीठ है। विपत्तिका साथी, अनाथोंका नाथ और अगृहीका गृह है। अब्दुल रहीमको जब अपदस्थ करके मुगलशासनने अवध सूबेसे निकाल दिया था, तो वे चित्रकूटमें ही रहते थे। उन्होंने कहा है कि अवधका नरेश (सूबेदार) चित्रकूटमें रह रहा है; जिसपर विपदा पड़ती है, वह यहाँ आता है। पर महामति प्राणनाथ १६८७ ई० में बिना विपदामें पड़े ही गये थे। श्रीरामनवमीके दिन वे कुछ अनुयायियोंके साथ चित्रकूट गये थे। वहाँ उन्होंने पावन वाणी कुलजमस्वरूपके अन्तिम ग्रन्थ 'कयामतनामा'की रचना की। महाराज छत्रसालके विशेष अनुरोधपर वे पन्ना (मध्यप्रदेश) लौट गये। वहीं १६९४ ई० में उन्होंने समाधि ली। सुन्दरलालने उनकी वाणीको प्रतिष्ठित किया, जो आज भी है। महाराजा छत्रसाल भी वहाँ आये थे। परिक्रमा (कामदगिरि)-मार्गको उन्होंने व्यवस्थित और विस्तृत

कराया था। रींवा/बांधवनरेश अनवरत चित्रकूटसे जुड़े रहे हैं। मन्दाकिनी घाटपर उनका आवास और मन्दिर है।

चित्रकूटका आधासे अधिक भाग मध्यप्रदेशमें है। शेष उत्तरप्रदेशमें है। आज चित्रकूटधाम नामसे जनपद हो गया है। चित्तौड़गढ़का भी पूर्व नाम चित्रकूट रहा है। चित्रकूट शैलीकी पीठिका, प्रासाद शैली आदिका राजा भोजने अपने ग्रन्थमें सम्मानपूर्वक स्मरण किया है। चित्तौड़में राजा भोजने अपना कौमारकाल पूरा किया था। इसके साथ उन्होंने अपने ग्रन्थ 'समरांगणसूत्रधार'को पूर्ण किया था।

चित्रकूटमें अतीत और वर्तमानका समन्वय है। सिद्धान्त और व्यवहारका समन्वय है। कामदगिरिकी परिक्रमा राम-कृष्णके अतिरिक्त रामकथाके महत्त्वपूर्ण पात्रोंके मन्दिर और सम्प्रदायोंके मठ हैं। पुस्तक एवं पूजा-पाठकी सामग्रीकी दुकानें हैं। सबमें समन्वयी भाव है। खाने-पीने और जलपानमें भी नयी-पुरानी व्यवस्था है। प्राय: लोग सायं और प्रात: परिक्रमा करते हैं। कोई सामान्य रूपसे चलकर तो कोई लेटकर करता है। जनश्रुति है कि वाल्मीकिके आश्रमसे चित्रकूटतक भरतजी लेटकर आये थे। उनका अनुकरण आज भी करते हुए लोग लेटकर परिक्रमा करते हैं। मठ-मन्दिरोंके दर्शन करते हुए लोग चलते हैं। परिक्रमाके पाँच प्रमुख द्वार हैं। मुख्य द्वारपर कामतानाथजी हैं।

मन्दाकिनी नदीकी दशा आज अच्छी नहीं है। जिस पवित्रताका वर्णन पुराणों तथा अन्य साहित्यमें है—वह आज कत्तई नहीं है। धर्मप्राण जनता उसमें स्नान करती है। दीपक जलाकर तैराती है, आरती करती है। दीपावलीपर दीप जलाने (धारामें) और आरतीका विशेष महत्त्व है। घाटकी सीढ़ियोंपर भी दीपमालाएँ सजायी जाती हैं। ऐसी अवधिमें घाटों और नदीकी शोभा निराली हो जाती है। आजका चित्रकूट अतीत और वर्तमानका महासंयोग है। ऋषि भारद्वाज और वाल्मीकिने रामको स्थायी निवासके लिये चित्रकूटको बताया था। इससे स्पष्ट होता है कि इसकी महिमा सतयुगसे स्थापित है। चित्रकूटकी पहाड़ियाँ बहुत पुरानी हैं। कामतानाथ पहले थे। मन्दाकिनी नदी भी थी। सबके इतिहास और महिमाका वर्णन भारतीय वाङ्मयमें है।

आज जो चित्रकूटके वासी हैं—वे झुग्गी-झोपड़ी और मिट्टी तथा खपरैलके मकानवाले ही हैं। गाँवोंमें जो हैं, वे भी कोई बड़े आदमी नहीं हैं।

तीर्थरूपमें महत्त्व होनेसे सन्त-महात्मा यहाँ पहुँचे, उनके मठ-मन्दिर बने, उनकी गायें भी पहुँचीं। रामभक्ति-धाराके सन्त-महन्त अधिक पहुँचे। इससे एक लम्बी शिष्य-मण्डलीका यहाँ आना-जाना और रहना प्रारम्भ हुआ। भक्ति-मठ-आन्दोलनमें यहाँ मन्दिर अधिक बने। अपनी परम्पराके अनुसार वे चल रहे हैं। नयी रीतिके मठ-मन्दिर, होटल, यात्री-निवास, व्यक्तिगत एवं पर्यटन विभागके यात्री निवास बने हैं। पास-पड़ोसमें अधिकारियों, शिक्षकों और धर्मप्रेमियोंके आवास बन रहे हैं। अधुनातन रीतिसे इसका पूर्ण विकास हो रहा है। लोग कामदगिरिकी परिक्रमा, मन्दाकिनीमें स्नान-पूजा करके अपनी रुचिके अनुसार विविध आवासोंमें रहते हैं। देशभरके लोग यहाँ आते हैं, संस्कृतियों और सभ्यताओंका संगम होता है। राष्ट्रीय रामायण-मेलाका विशाल प्रांगण, मंच और आवासीय भवन है। विद्वानोंके व्याख्यान, रामलीला, रासलीला तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं। सबमें समरसता मिलती है। सुन्दर मेले और प्रदर्शनियोंका आगमन होता है। मथुरा-वृन्दावनकी रासलीला तथा देशके कोने-कोनेसे लोककलाके विशेषज्ञोंकी टोलियाँ आती हैं। भारत सरकारका सांस्कृतिक मन्त्रालय पूर्ण सहयोग करता है। लोहियाद्वारा प्रवर्तित रामकथा चलती है। उनका सपना था कि रामकथासे विश्व-मानवको जोड़ा जा सकता है। दो विश्वविद्यालय तथा अन्य विद्यालय-महाविद्यालय चलते हैं।

सबके उपरान्त ढाकमें तीन पात ही रह गये। सृष्टिके विकाससे आजतकके मूल निवासी अपनी झुग्गी-झोपड़ी या खपरैलके मकानसे छोटी कुल्हाड़ी और डण्डा लेकर प्राय: स्त्रियाँ और सयानी लड़कियाँ जंगलकी ओर निकल जाती हैं। दोपहरतक जंगलसे लकड़ियोंका बोझ लिये लौटती हैं। दरवाजेपर रखकर

नहाती-खाती और सायं बाजारमें लकड़ी बेचती हैं, कुछ घूमकर, कुछ दरवाजेपर। रात गयेतक वे खाने-पीनेकी तथा अन्य आवश्यक सामग्री खरीदती हैं।

राम भी सबेरे निकल जाते, दिनभर बाहर रहते और सायं लौटकर कामदगिरिपर आते थे। अध्यात्म, भक्ति, माया और नरलीलाके नामपर चाहे जो रूपक तैयार किया जाय, पर रामका वनवासकाल महान् दु:खदायी था। तब चित्रकूट बिलकुल बीहड़ क्षेत्र रहा होगा। आज भी जंगलकी भूमिपर नंगे पाँव चलना महान् कष्टकारक है। कंकरीली, ऊबड़-खाबड़ भूमि, नदी-नालोंके प्रकोप, हिंसक पशुओं और जीव-जन्तुओंके संकट, वर्षा, धूप, गर्मी और शीतके प्रकोप भोगते रहे। गुरुखुल, कुश, कंटक, पत्थरसे आवृत धरतीपर चलते रहे। चित्रकूटका गुरुखुल यदि एक बार चुभ जाय तो उसकी असह्य पीड़ा कभी नहीं भुलायी जा सकती है। पृथ्वीपर एक पुरुष और एक स्त्रीको जितने दु:ख मिल सकते हैं, वे सभी राम-लक्ष्मण और सीताको इस अवधिमें मिले।

सबको चित्रकूटने देखा है। कलियुगी कल्पनाओं और उनकी उड़ानोंपर यह गम्भीर होकर सोचता है कि मूल रूप क्या है? सबका कामदगिरि सबसे दृढ़ साक्षी है। आज यह कहता है कि सबको तुम अपनी विद्यासे ठग सकते हो, पर मुझको नहीं। यह स्थिर, दृढ़, प्रत्यक्षदर्शी, निष्पक्ष साक्षी और मौन वक्ता है। इसको किसीसे क्या लेना-देना है? यह तो फक्कड़ अवधूत है, जिसके सामने सभी दाताओंके सिर झुक जाते हैं, वे याचक हो जाते हैं। इसीसे चित्त बार-बार चित्रकूट धाम जाने और कामदगिरिकी परिक्रमा करनेके लिये व्यग्र रहता है। यह है तो पाषाणसमूह, परंतु इसमें देवत्व है, अपने इतिहास, संस्कृति और भावधाराको सँजोकर रखने और योग्य पात्रको बाँटनेकी शक्ति है, यही तो देवत्वप्रदायिनी शक्ति है, वरना पाषाण तो पाषाण। इसी गुणके कारण यह आज भी पूज्य है। लोग चलकर ही नहीं, छ: किलोमीटरकी लेटकर भी परिक्रमा करते हैं। बाल, वृद्ध और युवा सभी नंगे पाँव चलते हैं। बिना कुछ मिले ऐसा एक-दो कर सकते हैं, पर अनेक तो नहीं कर सकते हैं?

'सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो'

जहाँ बनु पावनो सुहावने बिहंग-मृग,
देखि अति लागत अनंदु खेत-खूँट-सो।
सीता-राम-लखन-निवासु, बासु मुनिनको,
सिद्ध-साधु-साधक सबै बिबेक-बूट-सो॥
झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनि मंजुल महेसजटाजूट-सो।
तुलसी जौं रामसों सनेहु साँचो चाहिये तौ,
सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो॥

जहाँका वन अति पवित्र है और पशु-पक्षी अत्यन्त सुहावने हैं तथा जिसे खेतके टुकड़ेके समान (हरा-भरा) देखकर बड़ा आनन्द होता है, जहाँ सीता, राम और लक्ष्मणका निवास था, जहाँ अनेकों मुनिजन रहते हैं तथा जो सिद्ध, साधु और साधकोंके लिये विवेकरूपी वृक्षके समान है; जहाँ सभी झरनोंसे अति शीतल और पवित्र जल झरता रहता है तथा मन्दाकिनी नदी श्रीमहादेवजीके जटाजूटके समान जान पड़ती है। तुलसीदासजी कहते हैं—यदि तुम्हें भगवान् रामके सच्चे स्नेहकी चाह है, तो प्रेमपूर्वक अद्भुत चित्रकूटका सेवन करो। [**कवितावली**]

संत-चरित—

महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र

(श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)

भगवती कावेरीके तटका अधिकांश क्षेत्र महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी आध्यात्मिक साधना और तपस्यासे गौरवान्वित है। वे अपने समयके महान् अध्यात्मवादी थे, बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्ति थे। वे जन्मजात विरक्त और परम तपस्वी थे। उन्होंने कुम्भकोणम्के निकट भगवती कावेरीके तटपर स्थित तिरुविशनल्लूर ग्रामको अपनी पवित्र स्थितिसे धन्य किया था। इस गाँवको तंजौरके मराठा शासक शाहजीने छियालीस विद्वानोंको शाहजीपुरम्के नामसे प्रदान किया था। उपर्युक्त विद्वानोंमें मोक्ष सोमसुन्दर अवधानी भी एक थे, जो सदाशिव ब्रह्मेन्द्रके पिता थे। ये सात्त्विक स्वभावके व्यक्ति थे। सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी माताका नाम पार्वती था। सदाशिव ब्रह्मेन्द्रका बचपनसे ही विद्यामें अनुराग था। बाल्यावस्थामें ही उनका विवाह कर दिया गया था। पत्नीके घर आनेपर उन्हें गुरुकुलसे बुलाया गया। उनकी अवस्था उस समय इक्कीस सालकी थी। घरमें वधूके आगमनका उत्सव मनाया जा रहा था। उस दिन सदाशिव ब्रह्मेन्द्रको भोजनके पहले उपवासका आदेश दिया गया था। भोजनमें विलम्ब होते देखकर उनके मनमें विचार उठने लगा कि निस्संदेह वैवाहिक जीवन परम दु:खमय है। अभी इसका आरम्भमात्र है, पर मुझे भोजनतकके सम्बन्धमें विलम्ब सहना पड़ रहा है। वे तत्काल सावधान हो गये। उनके मनमें वैराग्य उमड़ पड़ा। उन्होंने सोचा कि परमात्माकी खोजमें लग जाना ही जीवनकी सार्थकता है। वे गुरुकी खोजमें निकल पड़े। उन्होंने कांचीपुरम्में कामकोटि मठके स्वामी परमशिवेन्द्रसे दीक्षा लेकर गेरुआ वस्त्र धारणकर संन्यास-आश्रममें प्रवेश किया।

महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्रके गुरु परमशिवेन्द्रके स्थानपर अध्यात्मज्ञानकी पिपासाकी शान्तिके लिये संत-महात्मा दूर-दूरसे आया करते थे। सदाशिव ब्रह्मेन्द्र उनसे वाद-विवादमें प्राय: उलझ जाया करते थे। परमशिवेन्द्रको यह बात पसन्द नहीं थी। एक दिन उन्होंने उलाहनेके स्वरमें शिष्यको सम्बुद्ध किया, 'तुम बोलना कब बन्द करोगे?' गुरुके कृपामय शब्द थे। वे तत्काल ही सजग हो उठे; सदाके लिये उन्होंने मौन धारण कर लिया। वे 'मौनयोगी'के नामसे प्रसिद्ध हो गये। वे ब्रह्मचिन्तन और ग्रन्थ-रचनामें लग गये। उनकी 'आत्मविद्याविलास' नामकी रचनाने शृंगेरी मठके शिवाभिनवसच्चिदानन्द नृसिंह भारतीका उन्हें कृपापात्र बना दिया। दण्ड और कमण्डलुका परित्यागकर महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र अवधूत हो गये, वे समाधिमें मग्न रहने लगे।

एक समयकी बात है, वे एक खेतकी मेंड़को तकिया बनाकर उसपर सिर रखकर आत्मचिन्तन कर रहे थे। खेतिहरोंने उनको इस स्थितिमें देखकर व्यंग्य किया कि 'यद्यपि इन्होंने विषयासक्तिका पूर्ण त्याग कर दिया है, तथापि आराममें इनकी आसक्ति बनी हुई है।' यह बात उन्हें लग गयी। खेतिहर तो चलते बने, पर सदाशिव ब्रह्मेन्द्र मेंड़का आश्रय छोड़कर ही आराम करने लगे। सिर हवाके आधारपर जमीनसे थोड़ा ऊपर स्थित था। खेतिहरोंने लौटते समय उनको इस हालतमें देखकर उनके यौगिक प्रदर्शनकी भर्त्सना की। महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र सावधान हो गये। वे अवधूतवेषमें चल पड़े, योगसाधनाका भी उन्होंने परित्याग कर दिया। वे दिगम्बर हो उठे। शरीरपर न वस्त्र था, न रहनेके लिये घर था। अनायास खानेके लिये जो कुछ भी मिल जाता, उसे कररूप पात्रमें लेकर खा लिया करते थे। वे ब्रह्मोन्मादकी स्थितिमें इधर-उधर विचरण करने लगे। उन्होंने अपनी इस अवस्थाका विवरण अपने 'आत्मविद्याविलास' ग्रन्थमें प्रस्तुत किया है।

आन्तरमेकं किंचित् संततमनुसंदधन्महामौनी।
करपुटभिक्षामश्नन्नटति हि वीथ्यां जराकृतिः कोऽपि॥

संसारके प्रति पूर्ण अनासक्त होकर उन्होंने नैराश्यसे अपने आपको अलंकृत कर लिया। उनकी चित्तवृत्ति शान्त हो गयी, पेड़ोंके नीचे ही उन्होंने विश्रामस्थल बना लिया। वे निर्जन नदीके कुंजस्थलमें पुलिनरूप तल्पपर शयन करने लगे, वायु उनके लिये पंखा बन गयी तथा पूर्णचन्द्र ही उनके लिये दीपक था। यह थी उनकी ब्रह्मानन्दमयी अवस्था। 'आत्मविद्याविलास' में उनकी

इस दिगम्बर स्थितिका वर्णन उपलब्ध होता है—

आशावसनो मौनी नैराश्यालंकृतः शान्तः।
करतलभिक्षापात्रस्तरुतलनिलयो मुनिर्जयति॥
विजननदीकुञ्जगृहे मञ्जुलपुलिनैकमञ्जुतरतल्पे।
शेते कोऽपि यतीन्द्रः समरससुखबोधवस्तुनिस्तन्द्रः॥
भूतलमृदुतरशय्यः शीतलवातैकचामरः शान्तः।
राकाहिमकरदीपो राजति यतिराजशेखरः कोऽपि॥

यतिराजशेखर सदाशिव ब्रह्मेन्द्र जड़की तरह, बहरे और भूताविष्टकी तरह परमात्मामें लीन होकर इधर-उधर विचरते रहते थे। उन्हें लोग पागल समझते थे, पर उनके गुरु महात्मा परमशिवेन्द्रको अपने शिष्यकी वास्तविक दशाका ज्ञान था। वे खेद प्रकट करते थे कि 'मेरे हृदयका परिपाक ऐसा नहीं हो सका; मुझे इस तरहकी ब्रह्मोन्मादकी प्राप्ति नहीं हो सकी।'

उन्मत्तवत्संचरतीह शिष्य-
स्तवेति लोकस्य वचांसि शृण्वन्।
खिद्येत वा चास्य गुरुः पुराहो
ह्युन्मत्तता मे नहि तादृशीति॥

महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी अवधूत-अवस्था अत्यन्त विलक्षण थी। कभी तो वे वनोंमें विश्राम करते थे, तो कभी भगवती कावेरीके तटपर शिलाकी तरह जडीभूत अवस्थामें समाधिस्थ रहते थे। एक समयकी बात है, वे त्रिमूर्ति-क्षेत्रमें कावेरीके परम रमणीय तटपर कोडमुडी स्थानपर विश्राम कर रहे थे। सहसा उनकी समाधि लग गयी। वे बालूके एक टीलेपर आसनस्थ थे। अचानक कावेरीमें बाढ़ आ जानेपर लोगोंने समझा कि वे पानीके साथ कहीं बह गये। तीन-चार मासके बाद एक किसान नदी-तटसे बालू लाने गया। उसने फावड़ा चलाया ही था कि उसे रक्तरंजित देखकर वह आश्चर्यमें पड़ गया। उसने धीरे-धीरे फावड़ा चलाया और सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी समाधि टूट गयी। वे उठ खड़े हुए और बिना किसी मानसिक अशान्तिको प्रकट किये ही वे दूसरी दिशाकी ओर चल पड़े; ऐसा लगता था कि कुछ हुआ ही नहीं है। निस्संदेह जो व्यक्ति अपने जीवनमें ब्रह्मानन्दका रसास्वादन कर लेता है, उसके लिये जागतिक प्रपंचका रंचमात्र भी महत्त्व नहीं रह जाता।

यद्यपि संत आध्यात्मिक चमत्कार तथा अनायास प्राप्त सिद्धि और प्रदर्शनसे बहुत दूर रहते हैं, तथापि आध्यात्मिक साधनाके फलस्वरूप उनके भीतर विद्यमान तेज तो लोगोंको प्रायः प्रभावित करता ही रहता है। एक समयकी बात है—कुछ लोग खेतमें धान काटकर बोझा बनाकर रख रहे थे। रातका समय था। अँधेरी रात थी। महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र किसी ओरसे विचरण करते उधर ही आ पहुँचे और बोझेसे टकराकर जमीनपर गिर पड़े। खेत काटनेवालोंने उनको चोर समझा। मारनेके लिये हाथ उठाये ही थे कि हाथ उठे-के-उठे ही रह गये। दूसरे दिन प्रभातकालमें खेतका स्वामी आया। खेत काटनेवालोंने उसे सारी बात बता दी। महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र रातसे ही समाधिस्थ थे। प्रातः समाधिसे जागनेपर वे बिना किसीसे बातचीत किये ही वहाँसे चल दिये। खेत काटनेवालोंके हाथ भी पहलेकी तरह स्वस्थ हो गये।

संतसे किसीके अहितकी सम्भावना ही नहीं रहती। वे तो सदा मंगलस्वरूप होते हैं। साथ-ही-साथ बात भी सच है कि यदि उनके प्रति कोई अपराध कर बैठता है तो दैवी विधानसे उसे दण्ड मिलता है। संत स्वयं किसीको दण्ड नहीं देना चाहते, वे तो राग-द्वेषसे नितान्त परे होते हैं। एक समयकी घटना है, सदाशिव ब्रह्मेन्द्र एक वनप्रान्तमें विचरण कर रहे थे। उन्मत्त अवस्था थी, शरीर हृष्ट-पुष्ट था। किसी उच्च राजकर्मचारीके घरपर ईंधनके उपयोगके लिये उसी जंगलमें कुछ लोग जलानेकी लकड़ी काट रहे थे। उन्होंने लकड़ीका बोझा सदाशिव ब्रह्मेन्द्रके सिरपर रख दिया, महात्मा गाँवकी ओर चल पड़े। राजकर्मचारीके निवास-स्थानपर पहलेसे ही कुछ लकड़ी एकत्र थी। ज्यों ही महात्माने अपने सिरकी लकड़ी उतारकर उस ढेरमें रखी, त्यों ही आग लग गयी। सारी लकड़ी जल गयी। महात्माने विलक्षण मस्तीमें अपनी राह पकड़ी। सन्त-महात्माकी सबसे बड़ी सेवा यह है कि उनके प्रति किये गये प्रत्येक व्यवहारमें हम पूर्ण सावधान और सचेत रहें तथा इस बातका सदा ध्यान रखें कि अपनी असावधानीसे हम उनके प्रति रंचमात्र भी अपराध न कर बैठें।

सन्त सबकी सन्तुष्टिका ध्यान रखते हैं। अपने जनको सन्तुष्टि प्रदानकर वे स्वयं सन्तुष्ट होते हैं, यह उनका

स्वभाव है। वे भेदभावसे कोसों दूर रहते हैं। दूसरोंको प्रसन्न रखनेके लिये वे सदा सचेष्ट रहते हैं।

एक समयकी बात है, सदाशिव ब्रह्मेन्द्र उन्मत्त-अवस्थामें विचरण कर रहे थे। छोटे-छोटे बालकोंने उनको घेर लिया। वे भी लड़कोंका मन बहलाने लगे। बालकोंने आग्रह किया—'महाराज! मदुराके मन्दिरमें आज भगवान् सुन्दरनाथका बड़ा सुन्दर शृंगार होनेवाला है। हम महेश्वरका दर्शन करना चाहते हैं।' बालहठके सामने महात्माको नत होना पड़ा। उन्होंने अनेक बालकोंको अपने सिर और कन्धोंपर बिठाकर आँख मूँदनेको कहा। बालकोंको लिये-दिये वे बात-की-बातमें मदुरा पहुँच गये। बालकोंने वृषभकी पीठपर विराजमान भगवान् सुन्दरनाथका शृंगारयुक्त दर्शन किया। संतने बालकोंको प्रसाद दिलवाया। शृंगार-महोत्सव समाप्त होनेपर महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्रने पहलेकी ही तरह बालकोंको अपने स्थानपर पहुँचा दिया।

दक्षिण भारतके श्रेष्ठ राजयोगियोंमेंसे वे एक थे। उन्होंने महर्षि व्यासके ब्रह्मसूत्रमें निरूपित ब्रह्मको अपनी आध्यात्मिक साधनाका प्राण स्वीकार किया। उन्होंने ब्रह्मसूत्रपर महत्त्वपूर्ण 'ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका' नामकी विवृति प्रस्तुत की, जिसमें उनके ब्रह्मचिन्तनकी प्रक्रियापर यथेष्ट प्रकाश मिलता है। अपने गुरुके चरणोंमें उनकी अद्भुत निष्ठा थी; अपने ब्रह्मचिन्तनको वे स्वगुरुनिष्ठाका परम फल मानते थे। 'सिद्धान्तकल्पवल्लीमें' सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी स्वीकृति है—

यदपांगतः प्रबोधो भवदुःस्वप्नावसानकरः।
तमहं परमशिवेन्द्रं वन्दे गुरुमखिलतन्त्रजीवातुम्॥

(सिद्धान्तकल्पवल्ली, ३)

'जिनके कृपाकटाक्षसे संसाररूप दुःस्वप्नका अन्त हो जाता है तथा आत्मसाक्षात्कार सहज-सुलभ हो जाता है, समस्त शास्त्रोंको नया जीवन देनेवाले उन परमशिवेन्द्र गुरुको मैं नमस्कार करता हूँ।'

उन्होंने निष्कल-निर्गुण, शुद्ध-बुद्ध परमात्माके चिन्तनमें कहा है—

निरुपमनित्यनिरीहो निष्कल निर्मायनिर्गुणाकारः।
विगलितसर्वविकल्पः शुद्धो बुद्धश्चकास्ति परमात्मा॥

उन्होंने अपने गुरुकी कृपाके प्रकाशमें ही परमात्मचिन्तन किया है। 'आत्मविद्याविलास' ग्रन्थमें उनकी कृतज्ञता-विज्ञप्ति है अपने गुरुके प्रति—

निरवधिसंसृतिनीरधिनिपतित जनतारणस्फुरन्नौकाम्।
परमतभेदनघुटिकां परमशिवेन्द्रार्यपादुकां नौमि॥

(आत्मविद्याविलास, २)

इसी तरह ब्रह्मसूत्र-वृत्तिके समापनमें वे कहते हैं—'कहाँ तो मैं अल्पायु बालक और कहाँ वेदान्तका यह गहन मार्ग! परमशिवेन्द्रकी कृपासे मैं वेदोंके तात्पर्यको जानकर उपनिषदोंकी व्याख्या करनेमें समर्थ हुआ हूँ'—

जडः क्वाहं बालः क्व च गहनवेदान्तसरणि-
स्तथाप्याम्नायार्थं परमशिवयोगीन्द्रकृपया।
विजानन् व्याख्यानं व्यरचयमहं वेदशिरस-
स्तदेतत्क्षन्तव्यं मयि सदयदृष्ट्या बुधजनैः॥

(ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका, अन्तिम श्लोक)

'आत्मविद्याविलास' सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी अत्यन्त मौलिक कृति है। उन्होंने बारह उपनिषदोंपर भी अपने विचार 'दीपिका' टीका लिखकर व्यक्त किये हैं। ब्रह्मसूत्रपर उनकी 'ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका वृत्ति' बड़ी उपादेय है। कहा जाता है कि पतंजलिके योगसूत्रपर भी उन्होंने 'योगसुधाकर' नामका भाष्य लिखा था। उनके गुरु परमशिवेन्द्रने उपनिषदोंसे ब्रह्मपरक शब्दोंको 'वेदान्तनामसहस्रव्याख्या' के नामसे संकलित किया था। सदाशिव ब्रह्मेन्द्रने इस संकलनको छत्तीस श्लोकोंमें 'आत्मानुसन्धान' नामसे संक्षिप्त किया था। अप्पय्य दीक्षितने 'वेदान्तसिद्धान्त-लेश-संग्रह' में वेदान्तसिद्धान्त-रत्नोंका विस्तारसे संग्रह किया। योगिराज सदाशिव ब्रह्मेन्द्रने 'सिद्धान्तकल्पवल्ली' नामसे दो सौ चौदह आर्याओंमें उन सिद्धान्तोंको संक्षिप्त किया।

कहा जाता है कि यतिराजशेखर सदाशिव ब्रह्मेन्द्र पृथ्वीपर दो सौ सालतक विराजमान रहे। ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको भगवती कावेरीके तटपर करूरके निकट नेरूर नामक स्थानमें उन्होंने महासमाधि ली। निस्संदेह वे जन्मजात सिद्ध थे। वे सदा सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माके चिन्तनमें तल्लीन रहकर विश्वातीत हो उठे।

मानव-जीवनमें सुख और दुःख

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

किसी भी कर्मके फलरूपमें प्राप्त परिस्थिति और भोगसमुदायमें राग नहीं करना चाहिये; क्योंकि जिस प्राप्त पदार्थमें मनुष्यका राग होता है, उसी जातिके अप्राप्त पदार्थोंका चिन्तन होता है तथा उनके संस्कार अंकित होकर वासनाका रूप धारण कर लेते हैं। उससे अन्तःकरण मलिन होता रहता है।

राग यानी आसक्ति, द्वेष यानी वैरभाव—इन दोनोंका समूल नाश करनेके लिये साधकको चाहिये कि इन्द्रिय-ज्ञानके अनुसार अनुकूल और प्रतिकूल प्रतीत होनेवाली परिस्थितियोंकी प्राप्तिमें जो सुख और दुःख होता है, उनमें किसी दूसरेको कारण न समझे। दूसरे व्यक्तियोंको, क्षुद्र जीवोंको या पदार्थोंको सुख-दुःखका कारण मान लेनेपर उनमें आसक्ति और वैरभाव होना अनिवार्य है। जबतक मनुष्यका किसी व्यक्तिमें या पदार्थमें राग-द्वेष विद्यमान रहता है, तबतक चित्त शुद्ध नहीं होता। उसके मनमें अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिन्तन होता रहता है।

वास्तवमें यदि देखा जाय तो सुख-दुःखमें दूसरा व्यक्ति, प्राणी या पदार्थ हेतु हैं भी नहीं। कोई पूछे कि कौन हेतु है, तो इस विषयकी मान्यता तीन भागोंमें बाँटी जा सकती है—

(१) यह कि पूर्वकृत अच्छे और बुरे कर्मोंके फलरूपमें ही समस्त प्राणियोंको अनुकूल और प्रतिकूल भोग प्राप्त होते हैं। दूसरा कोई कारण नहीं है। यह मान्यता तो उन मनुष्योंकी होती है, जो देहाभिमानी और कर्मासक्त हैं। अपनी इस मान्यताके अनुसार उनका बुरे कामोंको छोड़कर, अच्छे कर्मोंमें प्रवृत्त होनेका निश्चय दृढ़ होता है, जो उनको उन्नतिशील बनानेमें सहायक होता है। इसलिये यह मान्यता भी एक प्रकारसे अच्छी है।

(२) सुख और दुःखकी प्राप्तिका कारण एकमात्र मनुष्यका प्रमाद अर्थात् प्राप्त विवेकका आदर न करना यानी उसका सदुपयोग न करना ही है, दूसरा कुछ नहीं; क्योंकि विचारवान् साधकको जब किसी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक प्रतिकूलता प्राप्त होती है, तब वह उससे दुखी नहीं होता, बल्कि यह समझकर प्रसन्न रहता है कि प्रतिकूलता ही मनुष्यके जीवनको उन्नत करनेवाली है। जिसके जीवनमें प्रतिकूलताका अनुभव नहीं होता, उसकी उन्नतिकी ओर प्रगति नहीं होती। यदि प्रतिकूल परिस्थिति पैदा न होती तो शरीर और संसारसे अहंता-ममताका दूर होना प्रायः सम्भव ही नहीं था। अतः प्रतिकूल परिस्थिति तो शरीर और संसारसे अलग करनेवाली है। जब शरीरमें अहंभाव और उससे सम्बन्धित जगत्में मेरापन न रहे, तब कोई भी परिस्थिति मनुष्यको सुख या दुःख देनेवाली हो ही नहीं सकती। यह मान्यता उन विचारशील साधकोंकी होती है, जो एकमात्र प्रमादको ही अहंता-ममताका हेतु समझकर अपने प्राप्त विवेकका आदर करनेवाले हैं।

(३) तीसरी मान्यता हर-एक परिस्थितिमें सर्वत्र और सर्वदा भगवान्की कृपाका दर्शन करनेवाले, भगवान्पर निर्भर परमविश्वासी भक्तोंकी होती है। वे अनुकूल परिस्थितिमें तो इस भावनासे भगवान्की अहैतुकी कृपाका अनुभव करके उनके प्रेममें विभोर हो जाते हैं कि वे परम सुहृद् प्रभु मेरी हर-एक आवश्यकताका कितना अधिक ध्यान रखते हैं। मुझ-जैसे अधम प्राणीपर भगवान्की कितनी दया है, जो अपनी सेवा कराकर मुझे अपना प्रेम प्रदान करनेके लिये यह सामग्री और इनके उपयोगकी योग्यता दी है एवं प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त होनेपर वे यह सोचते हैं कि इस शरीरमें और संसारमें जो मैंने प्रमादवश सुख मान लिया था, जिसके कारण मैं अपने परम सुहृद् प्रभुसे विमुख हो रहा था, उस शरीर और संसारसे विमुख करके अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये भगवान्ने कृपापूर्वक यह परिस्थिति दी है। भगवान्की कैसी अनुपम दया है कि वे अपने दासको हर समय हर-एक प्रकारसे अपना प्रेम प्रदान करनेके लिये उत्सुक रहते हैं। इस प्रकार प्रभुकी कृपाका अनुभव करता हुआ उनके प्रेममें विभोर होता रहता है।

उपर्युक्त तीनों प्रकारकी ही मान्यता अपने-अपने अधिकारके अनुसार प्राणीको उन्नतिशील बनाती है। इसके विपरीत जो दूसरे प्राणियोंको या पदार्थोंको अपने सुख और दुःखका हेतु मानता है, उसका सब प्रकारसे पतन होता है; क्योंकि जिस प्राणी या पदार्थको मनुष्य

अपने सुखमें हेतु मान लेता है, उसमें उसका राग हो जाता है और जिसको दु:खका हेतु मानता है, उससे द्वेष हो जाता है। ये राग और द्वेष मनुष्यको उन प्राणी-पदार्थोंके चिन्तनमें लगाकर मनको मलिन और विक्षिप्त कर देते हैं। अत: उसको किसी भी समय शान्ति नहीं मिलती।

जब साधकका किसी प्राणीमें वैरभाव—द्वेष नहीं रहता, तब सबमें समानभावसे प्रेम हो जाता है। आसक्ति और स्वार्थको लेकर जो प्राणियोंमें प्रियता होती है, वह प्रेम नहीं है, वह तो मोह है। अत: वह प्रियता, जिस-जिस व्यक्ति या पदार्थमें ममता होती है, वहीं होती है। विभु नहीं होती। उसमें द्वेषका अभाव नहीं होता। परंतु जो द्वेषका समूल नाश होनेपर समभावसे सबमें प्रेम होता है, वह विशुद्ध प्रेम है। उसमें किसीसे कुछ लेना नहीं रहता। अत: वह प्रेम देखनेमें प्राणियोंके साथ होनेपर भी वास्तवमें भगवान्‌में ही है।

शास्त्रोंमें जो सुख-दु:खको समान समझनेकी बात कही जाती है, उसका भी यही भाव मालूम होता है कि दोनोंका एक ही नतीजा हो। परिणाममें भेद न हो। उपर्युक्त प्रकारसे जब साधक सुख-दु:खका कारण दूसरेको न मानकर प्रारब्धको या प्रमादको अथवा भगवान्‌की अहैतुकी कृपाको मान लेता है, तब उसका दोनों प्रकारकी परिस्थितियोंमें भेद-भाव नहीं रहता। उसके लिये अनुकूल परिस्थितिके समान ही प्रतिकूल परिस्थिति भी प्रसन्नता और विकासका कारण बन जाती है। साधक भोगसे योगकी ओर, मृत्युसे अमरताकी ओर तथा राग-द्वेषसे त्याग और प्रेमकी ओर आकर्षित हो जाता है।

उपर्युक्त भावनासे सुख 'उदार' बनानेमें और दु:ख 'विरक्त' बनानेमें समर्थ है, जिससे प्राणीका हित ही होता है। जो प्राणी सुख मिलनेपर उसके उपभोगमें लोलुप हो जाता है और दु:ख आनेपर भयभीत हो जाता है, वह बेचारा सुख-दु:खका सदुपयोग नहीं कर पाता, जिसका न करना वास्तवमें अवनतिका मूल है।

सुख-दु:खमें साधन-बुद्धि करके उनका उपर्युक्त प्रकारसे उपयोग करना साधकके लिये परम आवश्यक है। सुख-दु:खके उपयोगयुक्त जीवनको जीवन मान लेना भूल है। जीवन तो वास्तवमें वह है, जिसका अनुभव सुख-दु:खसे रहित होनेपर होता है।

लक्ष्मीका वास कहाँ है ?

एक सेठ रात्रिमें सो रहे थे। स्वप्नमें उन्होंने देखा कि लक्ष्मीजी कह रही हैं—'सेठ! अब तेरा पुण्य समाप्त हो गया है, इसलिये तेरे घरसे मैं थोड़े दिनोंमें चली जाऊँगी। तुझे मुझसे जो माँगना हो, वह माँग ले।'

सेठने कहा—'कल सबेरे अपने कुटुम्बके लोगोंसे सलाह करके जो माँगना होगा, माँग लूँगा।'

सबेरा हुआ। सेठने स्वप्नकी बात कही। परिवारके लोगोंमेंसे किसीने हीरा-मोती आदि माँगनेको कहा, किसीने स्वर्णराशि माँगनेकी सलाह दी, कोई अन्न माँगनेके पक्षमें था और कोई वाहन या भवन। सबसे अन्तमें सेठकी छोटी बहू बोली—'पिताजी! जब लक्ष्मीजीको जाना ही है तो ये वस्तुएँ मिलनेपर भी टिकेंगी कैसे? आप इन्हें माँगेंगे, तो भी ये मिलेंगी नहीं। आप तो माँगिये कि कुटुम्बमें प्रेम बना रहे। कुटुम्बमें सब लोगोंमें परस्पर प्रीति रहेगी तो विपत्तिके दिन भी सरलतासे कट जायँगे।'

सेठको छोटी बहूकी बात पसन्द आयी। दूसरी रात्रिमें स्वप्नमें उन्हें फिर लक्ष्मीजीके दर्शन हुए। सेठने प्रार्थना की—'देवि! आप जाना ही चाहती हैं तो प्रसन्नतासे जायँ; किंतु यह वरदान दें कि हमारे कुटुम्बियोंमें परस्पर प्रेम बना रहे।'

लक्ष्मीजी बोलीं—'सेठ! ऐसा वरदान तुमने माँगा कि मुझे बाँध ही लिया। जिस परिवारके सदस्योंमें परस्पर प्रीति है, वहाँसे मैं जा कैसे सकती हूँ।'

गुरवो यत्र पूज्यन्ते यत्राह्वानं सुसंस्कृतम्। अदन्तकलहो यत्र तत्र शक्र वसाम्यहम्॥

देवी लक्ष्मीने इन्द्रसे कहा—'इन्द्र! जिस घरमें गुरुजनोंका सत्कार होता है, दूसरोंके साथ जहाँ सभ्यतापूर्वक बात की जाती है और जहाँ मुखसे बोलकर कोई कलह नहीं करता (दूसरेके प्रति मनमें क्रोध आनेपर भी जहाँ लोग चुप ही रह जाते हैं), मैं वहीं रहती हूँ।' [श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र']

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ पापियोंके मनमें पाप, पुण्यवानोंके मनमें पुण्य और भक्तोंके हृदयमें भगवान् प्रेरणा करते हैं। प्रभु-प्रेरणासे मंगल-ही-मंगल होता है। अपने मनको जब हम भगवान्‌से मिलाकर रखेंगे तब भगवान् प्रेरणा करेंगे। भगवत्-प्रेरित भक्तके सभी कार्य दिव्य होंगे। रैदासजी प्रभुकी प्रेरणासे भगवान्‌की सेवा-पूजा करते थे तो प्रभुके मनमें रैदासकी कीर्ति बढ़ानेकी इच्छा हुई। काशीके विद्वान् ब्राह्मणोंने विरोध किया। यह भी प्रभुकी प्रेरणा थी। ब्राह्मणोंने राजासे शिकायत की। रैदासको राजदरबारमें बुलाया गया। रैदासजीने कहा प्रभु सेवा स्वीकार करते हैं। अपनी सेवाकी प्रेरणा प्रभुने दी है। सभामें सिंहासनपर प्रभु पधराये गये। राजाने कहा—'जो कोई अपनी प्रार्थनासे प्रभुको बुला लेगा, वह पूजाका अधिकारी होगा।'

पण्डितोंने मन्त्र पढ़कर बुलाया, पर प्रभु नहीं आये। रैदासकी प्रार्थना सुनकर उनके पास आ गये। उनकी वाणीमें दीनता थी। उन्होंने कहा कि प्रभो! आप हमसे अलग न होइये। या तो शीघ्र मेरे पास आ जाइये या मुझे अपने पास बुला लीजिये। मैं इस शरीरको त्याग करके आपके पास आकर आपकी सेवा करूँ। सेवामें ही मुझे रखिये। सेवायोग्य शरीर दीजिये। प्रभु रैदासकी गोदमें आ गये। रैदासकी सभामें जय-जयकार हुई। राजा-प्रजाने रैदासको प्रणाम किया। रैदास सब कार्य प्रभुकी प्रेरणासे करते थे, अतः प्रभुने रैदासका पक्ष लिया।

❀ भक्तजन भगवान्‌को भगवान् मानकर ही भक्ति करते हैं। इसी तरह सन्तको सन्त मानकर उसकी भक्ति की जाती है। नहीं तो भगवान् और भक्तजन अपनेको सर्वथा छिपाते रहते हैं, एक क्षण ऐश्वर्य—ईश्वरता दीख पड़ेगी, दूसरे क्षण भगवान् उसे छिपा लेते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन, युधिष्ठिर आदिके सामने अपनेको छिपाते थे। उनके साथ हँसने-बोलने, खाने-पीनेके समयमें वे लोग अनुभव करते थे कि मेरे मित्र हैं, मेरे भाई हैं। श्रीनारदजीने यज्ञके समय युधिष्ठिरको प्रह्लाद-चरित्र सुनाया और कहा—'ये देवकीनन्दन ही नृसिंह हैं।' श्रीकृष्णने कहा—'आप क्यों मेरे पेटपर लात मार रहे हैं। भाई-मित्र मानते हैं, तो साथ-साथ खिलाते-पिलाते हैं। ईश्वर मानेंगे तो अलमारीमें रखकर दो-चार बताशोंका भोग लगाकर शयन करा देंगे। इसलिये मित्र या भ्राता माननेसे मैं विशेष प्रसन्न रहता हूँ।'

❀ श्रीप्रभुकी प्रसन्नताका फल है कि बुद्धि शुद्ध रहे। विषयोंकी आशा न रहे। संसारी सम्पत्तिकी प्राप्ति—यह रामजीकी कृपाका उत्तम फल नहीं है। भक्तजन संसारसे विरक्त रहते हैं। प्रभुकी इच्छा होती है तो वे लौकिक सम्पत्ति देकर लोकमें भक्तका सम्मान बढ़ाते हैं।

'करी गोपालकी सब होय।
जो अपनौ पुरुषारथ मानै झूठो है सब सोय॥'

❀ एक बादशाहका स्वभाव अति क्रूर था। थोड़े अपराधपर भारी दण्ड देता था। एक दिन भोजन परोसते समय रसोइयासे शाकका छींटा उसके पाजामेपर पड़ गया। बादशाह आग-बबूला हो गया, तब रसोइयाने सारा शाक उसके ऊपर उड़ेल दिया। क्रुद्ध होकर बादशाहने पूछा—'तूने ऐसा क्यों किया?' तब उसने कहा—छींट पड़ी, थोड़ा अपराध, भारी दण्ड। आप फाँसी देते तो लोग आपकी निन्दा करते, अतः मैंने अपराधको बड़ा कर दिया, आप फाँसी देंगे तो आपकी निन्दा न होगी। मेरी निन्दा होगी। यह सुनकर बादशाहने उससे शिक्षा ग्रहण की, स्वभावको बदल लिया। सच्चा सेवक स्वामीकी निन्दा नहीं चाहता, स्वामीके स्वभावमें सेवककी निष्ठाने परिवर्तन किया।

❀ सन्तोंसे, बड़ोंसे आशीर्वाद माँगना चाहिये, इससे दैन्य सुरक्षित रहता है। प्रेमीभक्त मात्र सप्रेम प्रणाम करते हैं, उन्हें बिना माँगे ही अभीष्टकी प्राप्ति हो जाती है। प्रभु सबके स्वामी हैं, रक्षक हैं, पर जबतक हममें दास्य नहीं होगा, हम रक्ष्य न होंगे, तबतक वे स्वामी बनकर रक्षा नहीं करेंगे। [**'परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार**]

गो-चिन्तन—

गोमाताके प्रति कृतज्ञ भाव रखें

(श्रीअशोकजी कोठारी)

सनातन धर्म क्या है? इसके सम्बन्धमें श्रीवाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डमें पर्वतश्रेष्ठ मैनाक श्रीहनुमान्‌जीको सनातन धर्मका रहस्य समझाते हुए कहते हैं कि—

'कृते च प्रतिकर्तव्यं एष धर्मः सनातनः'

अर्थात् जिसने हमारे प्रति किंचित् भी उपकार किया है, उसके प्रति सदा कृतज्ञ रहना—यही सनातन धर्म है।

भगवान्‌की सृष्टिमें गाय-जैसा कोई कृतज्ञ प्राणी नहीं है। जो प्रेमको स्वीकारकर उपकारका ऐसा उत्तर दे, ६८ करोड़ तीर्थ एवं ३३ कोटि देवताओंका चलता-फिरता विग्रह गाय है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर गायका जो उपकार है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। भगवान्‌के सम्बन्धमें यह बात कही जाती है कि शुक, सनकादि, शेष, शारदा भी प्रभुके गुणोंका सांगोपांग वर्णन करें, यह सम्भव नहीं है। उन श्रीभगवान्‌के चरणोंमें प्रार्थना करें कि आप अपनी उपास्य देवता गोमाताके गुणोंका वर्णन करें, उनके उपकारोंको गिनायें तो सम्भवतया भगवान् भी गोमाताकी चरणरजको मस्तकपर चढ़ाकर अश्रुपूरित नेत्रोंसे मूक रहकर ही गोमाताकी महिमाका वर्णन करेंगे। ऐसी गोमाताकी महिमा है। वेदोंकी १३३१ ऋचाओंमें केवल गो-महिमा है। पुराणोंमें, स्मृतियोंमें, सन्तोंकी वाणीमें गो-महिमा है। वेदसे लेकर पुराण, आगम, इतिहास-ग्रन्थ और सन्तोंकी वाणियोंका विस्तृत गहन अध्ययन हो और गम्भीर चिन्तन-विचारपूर्वक समस्त उद्धरणोंको एक जगह संकलित किया जाय, उनकी व्याख्या प्रस्तुत की जाय तो एक विशाल ग्रन्थ तैयार हो जायगा, इतनी गोमाताकी महिमा है!

जबतक हमारी बुद्धिमें ये बात बनी रहेगी कि गाय पशु है, तबतक ठीकसे सेवा नहीं बन पायेगी। सेवा सदा सेव्यकी होती है, उपासना सदा उपास्यकी होती है और उपासना, सेवा तब सम्भव है, जब सेव्यके प्रति, उपास्यके प्रति हमारी यह बुद्धि बन जाय कि ये साक्षात् भगवान् हैं। गाय साक्षात् भगवान् है, ये बात हमारे ध्यानमें आ जाय और ऐसा ध्यान करके गोसेवा की जाय तो भगवत्प्राप्ति हो जाय। लेकिन हमारे द्वारा गायके प्रति अपराध बनते जाते हैं, इसका कारण है कि हमारी गायके प्रति पशुबुद्धि बनी रहती है, इसलिये सेवासे जैसा लाभ मिलना चाहिये, वह लाभ फिर नहीं मिल पाता। गोगव्य यदि सेवा-पूजामें नहीं है तो भगवान् सन्तुष्ट नहीं हैं। बिना गायके गोविन्दका पूजन सम्भव नहीं है। गोविन्दका वांछित गाय है। महाभारतके अनुशासन-पर्वमें गोमाताकी महिमाके बारेमें कहा गया है—

गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चिदिहाच्युत॥
कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव।
गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम्॥
गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते।
अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः॥
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ।
गावो यज्ञस्य नेत्र्यो वै तथा यज्ञस्य ता मुखम्॥
अमृतं ह्यव्ययं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च।
अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः॥
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः।
गावः कामदुहो देव्यो नान्यत् किञ्चित् परं स्मृतम्॥

अर्थात् च्यवन ऋषिने राजा नहुषसे कहा—अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले हे राजेन्द्र! मैं इस संसारमें गौओंके समान कोई धन नहीं देखता हूँ। वीर भूपाल! गौओंके नाम और गुणोंका कीर्तन तथा श्रवण करना, गौओंका दान देना और उनका दर्शन करना—इनकी शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा की गयी है। ये सब कार्य सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाले और परम कल्याणकी प्राप्ति करानेवाले हैं। गौएँ सदा लक्ष्मीकी जड़ हैं। उनमें पापका लेशमात्र भी नहीं है। गौएँ ही मनुष्योंको सर्वदा अन्न और हविष्य देनेवाली हैं। स्वाहा और वषट्कार सदा गौओंमें ही प्रतिष्ठित रहते हैं। गौएँ ही सदा यज्ञका संचालन करनेवाली तथा उसका मुख हैं। वे विकाररहित

दिव्य अमृत धारण करनेवाली और दुहनेपर अमृत ही देती हैं। वे अमृतकी आधारभूत हैं, सारा संसार उनके सामने नतमस्तक होता है। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं, गौएँ स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं। गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं, उनसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्णजन्म-खण्डमें भगवान्

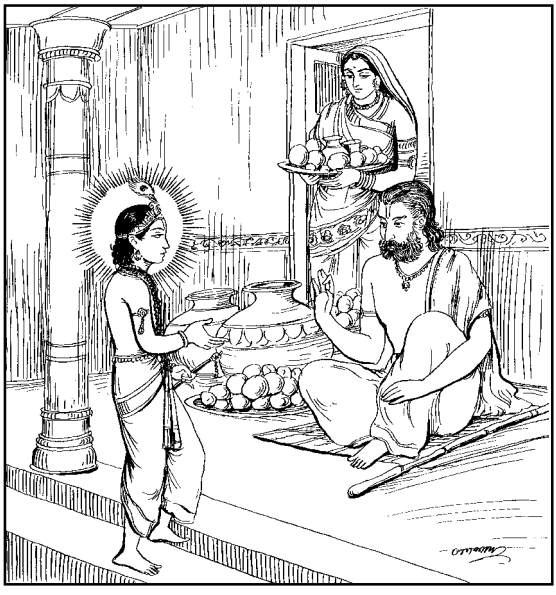

श्रीकृष्ण नन्दबाबाको गौओंकी महिमा बताते हुए कहते हैं—

सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च।
तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः॥
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः।
तीर्थस्नातो भवेत् सद्यो जयस्तस्य पदे पदे॥
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम्।
प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥

अर्थात् गोमाताके शरीरमें समस्त देवगण निवास करते हैं और गोमाताके चरणोंमें समस्त तीर्थ निवास करते हैं। गोमाताके गुह्यभागमें लक्ष्मी सदा रहती हैं। गोमाताके पैरोंमें लगी हुई मिट्टीका तिलक जो अपने मस्तकपर लगाता है, वह तत्काल तीर्थजलमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त करता है और उसकी पद-पदपर विजय होती है। जहाँपर गौएँ रहती हैं, उस स्थानको तीर्थभूमि कहा गया है। ऐसी भूमिमें जिस मनुष्यकी मृत्यु होती है, वह तत्काल मुक्त हो जाता है। यह निश्चित है।

गवां दृष्ट्वा नमस्कृत्य कुर्यात्त्वेव प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥
मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।
वृद्धिमाकाङ्क्षता पुंसा नित्यं कार्याः प्रदक्षिणाः॥

गोमाताका दर्शन एवं नमस्कार करके उनकी परिक्रमा करे। ऐसा करनेसे सातों द्वीपोंसहित भूमण्डलकी प्रदक्षिणा हो जाती है। गौएँ समस्त प्राणियोंकी माताएँ एवं सुख देनेवाली हैं। वृद्धिकी आकांक्षा करनेवाले मनुष्यको नित्य गौकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने।
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने।
भुवः पर्यटने यत्तु वेदवाक्येषु यद्भवेत्॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः।
तत्पुण्यं लभते सद्यो गोभ्यो दत्वा तृणानि च॥

गोमाताको तृण खिलानेका बहुत ही पुण्य बताया गया है। कहा है—तीर्थस्थानोंमें जानेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जो पुण्य होता है तथा सभी व्रतों और उपवासोंमें जो पुण्य स्थित है, महादान देनेमें जो पुण्य है, श्रीहरिकी पूजामें जो पुण्य है, पृथ्वीकी परिक्रमामें जो पुण्य है तथा समस्त सत्य वाक्योंमें—शास्त्रीय वेदवाक्योंमें जो पुण्य है और मनुष्यको यज्ञोंमें यज्ञ-दीक्षा ग्रहण करनेसे जो पुण्य अर्जित होता है, वे सभी पुण्य केवल गायोंको तृण खिलानेभरसे तत्क्षण ही मिल जाते हैं।

आज त्रिलोकीमें गोमाताके अतिरिक्त ऋषि, मुनि, देव, मानवसहित ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जो अपनी निःश्वासमें प्राणवायु (ऑक्सीजन) देता है। गोमाताके अतिरिक्त त्रिलोकीमें ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जिनका मल-मूत्र पवित्र हो, ग्राह्य हो, पूजामें काम आता हो, गोमाताका गोबर, गोमूत्र, धरतीमाताका शुद्ध आहार है। आजकी आवश्यकता है कि ऐसी हमारी पूज्य गोमाताके प्रति कृतज्ञभाव रखते हुए हम उनके चरने, विचरण करनेके लिये गोचर भूमिकी उदारतापूर्वक व्यवस्था करें, उन्हें कत्लखानोंमें जानेसे बचायें और उनके लिये चारे आदिका प्रबन्ध करें।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

जीवनको भगवत्परायण बनायें

महोदय! सादर हरिस्मरण, आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए।

आपने लिखा कि अब मैं संसारमें अकेला ही रह गया हूँ, इसका यह भाव समझमें आया कि आपके बाल-बच्चे और स्त्री आदि कोई नहीं रहे हैं; क्योंकि वैसे तो संसारमें कोई भी अकेला कैसे रह सकता है?

अब बात यह है कि इस परिस्थितिमें आपको क्या करना चाहिये, यह आप जानना चाहते हैं। उसका उत्तर मैं अपनी समझके अनुसार लिख रहा हूँ। आप उचित समझें तो इसे काममें ला सकते हैं।

(१) आपको यह मानना चाहिये कि 'भगवान्‌ने संसारका मोह छुड़ाकर मुझे अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये विशेष कृपा करके मुझे यह परिस्थिति प्रदान की है। कुटुम्बके रहते हुए उन सबको अपना न मानना, उनमेंसे ममता उठाकर भगवान्‌को अपनाना और उनका होकर रहना बड़ा ही कठिन था। अत: अबसे मुझे अन्य किसीको भी अपना नहीं मानना है एवं किसीसे सम्बन्ध नहीं जोड़ना है; एकमात्र भगवान् ही मेरे हैं।'

(२) आपने जो यह निश्चत किया कि 'भविष्यमें सांसारिक झगड़ेमें नहीं पड़ना है'—यह बहुत ही अच्छा है। अब आप जो कुछ करें, उसे ईश्वरकी सेवा और उन्हींका काम समझकर उन्हींकी प्रसन्नताके लिये करें। अपने सुख-दु:खका कारण किसी भी व्यक्तिको, किसी भी वस्तुको, किसी भी परिस्थितिको और किसी भी अवस्थाको न मानें। ऐसा समझें कि जो कुछ अपने-आप हो रहा है, वह भगवान्‌की इच्छासे ही हो रहा है और उसीमें मेरा कल्याण भरा हुआ है। भगवान्‌ने जो कुछ शरीर-इन्द्रियाँ और मन-बुद्धि तथा वस्तु आदि मुझे दे रखे हैं, सब उनके हैं, इन सबको उन्हींकी प्रेरणाके अनुसार जगत्-जनार्दनकी सेवामें लगा देना है। जिस शरीरको अबतक मैं अपना समझता था, वह भी उन्हींकी वस्तु है, इस दृष्टिसे इसका पालन-पोषण भी उन्हींकी सेवाके अन्तर्गत है। मुझे अपने सुख-भोगके लिये कुछ भी नहीं चाहिये। मेरे तो एकमात्र भगवान् हैं और उनका प्रेम ही एकमात्र मेरा परम सुख और जीवन है। इस प्रकार संसारसे पूर्णतया निराश होकर एकमात्र प्रभुपर निर्भर हो जाना, प्रत्येक परिस्थितिमें उनकी अहैतुकी कृपाका अनुभव करते हुए उनके प्रेममें विभोर रहना और भगवान्‌के प्रेरणानुसार उनकी वस्तुओंको उन्हींकी प्रसन्नताके लिये उनके काममें लगाते रहना तथा उसके बदलेमें किसीसे भी किसी प्रकारके सुखभोगकी चाह न करना एवं किसी प्रकारका अभिमान भी नहीं करना—यह साधन बहुत ही अच्छा मालूम होता है।

काम-क्रोध आदि अवगुणोंके विषयमें लिखा कि 'इन शत्रुओंका नाश नहीं हुआ है', सो भगवत्-शरणागत और इच्छारहित साधकके सामने इनका वश नहीं चलता। जबतक मनुष्य अपने अधिकारकी पूर्ति दूसरोंसे चाहता है, तभीतक राग-द्वेष अपना बल दिखा सकते हैं। जब साधक दूसरोंके अधिकारकी धर्मानुकूल पूर्ति करना ही अपना ध्येय बना लेता है, किसीसे कुछ लेना नहीं चाहता और अपना कोई अधिकार भी नहीं मानता, तब उसके अहंता-ममताका अभाव हो जानेपर राग-द्वेषादि शत्रुओंका नाश अपने-आप हो जाता है।

आपने जीवनका उद्देश्य पूछा, सो मनुष्य-जीवनका उद्देश्य भगवान्‌को प्राप्त कर लेना ही है। उसकी प्राप्तिका उपाय शास्त्रोंमें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग बताया गया है। जिस अधिकारीको जो अनुकूल पड़े, उसके लिये वही सरल है। प्राय: अधिक मनुष्योंके लिये भक्तिप्रधान कर्मयोग ही सरल पड़ता है। उसका खुलासा

ऊपर लिखा ही गया है।

आपने पूछा कि 'जीवनका क्रम किस प्रकारका होना चाहिये, जीवनमें व्यावहारिकता कितने अंशमें होनी चाहिये और संसारकी उपेक्षा किस अंशमें की जा सकती है?' इसका उत्तर यह है कि दूसरोंको धर्मानुकूल सुख पहुँचानेके लिये अर्थात् प्राप्त शक्तिका सदुपयोग करनेके लिये व्यवहारमें पूर्ण कुशलता और तत्परता होनी चाहिये तथा अपने सुखभोगके लिये उपेक्षा होनी चाहिये।

जीवनकी सही दशा जाननेके लिये सबसे सरल साधन अपने जीवनका निरीक्षण करते रहना है। अपने दोषोंको देखना और उनको पुन: न करनेका दृढ़ संकल्प करना, गुणोंका अभिमान न करना और दूसरोंके दोष न देखना—यही इसका उपाय है।

किन ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिये—पूछा, सो गीता, रामायण और अन्य आध्यात्मिक शिक्षाकी पुस्तकें जो बिना कष्टके मिल जायँ, उन्हें पढ़ना और उनमें जो अच्छी बात मिले, उसके अनुसार अपना जीवन बनानेकी चेष्टा की जाय तो पुस्तकोंके अध्ययनसे भी लाभ हो सकता है। पर पहले बताया हुआ साधन तो तब भी करना ही पड़ेगा।

अपने जीवनकी नौकाको संसारके प्रवाहमें छोड़ देना तो कभी भी उचित नहीं है। हाँ, भगवान्‌के भरोसेपर उसे छोड़ा जा सकता है। उनपर निर्भर होनेवालेको कभी धोखा नहीं होता।

आपने पूछा कि 'जीवन-निर्वाहके लिये क्या किया जाना चाहिये?' इसका उत्तर यह है कि जिस कामसे देशकी, समाजकी और अपने पड़ोसियोंकी भलाई हो, जो काम उनके हितका साधन हो, जिस कामसे सबको अपने हित-साधनमें सहयोग मिलता हो, ऐसा कोई भी काम, जो आपके शरीरसे हो सके, पूरा मन लगाकर उत्साह और धैर्यके साथ निष्काम भावसे करना चाहिये तथा उसे भगवान्‌की सेवा समझकर उनकी प्रसन्नताके लिये ही करना चाहिये। जिस शरीरसे सेवा की जाती है, उसके निर्वाहके लिये जो कुछ धर्मानुकूल प्राप्त हो, उसे उस शरीरके पालनमें लगा देना चाहिये। उसे भी भगवान्‌का ही काम समझना चाहिये, क्योंकि शरीर भी तो उन्हींकी वस्तु है। शरीरके पालन-पोषणमें कभी भी उपभोगका रस नहीं लेना चाहिये।

जीवनसे निराश न होकर जीवनको भगवत्-परायण बनाना चाहिये। ऐसा करनेमें मनुष्य सदैव स्वतन्त्र है; क्योंकि भगवान् इससे सहमत हैं। शेष प्रभुकृपा।

(२)

सकाम और निष्काम भक्ति

महोदय! आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। सर्वत्र और सब वस्तुओंमें भगवान् श्रीरामका स्मरण होना तो बड़े ही सौभाग्यकी बात है। इसमें पागलपनकी कोई बात नहीं है। ऐसी परिस्थितिमें भगवान्‌की परम दया समझकर साधकको अपने मनमें कृतज्ञताका भाव भरना चाहिये और भगवान्‌के प्रेममें निमग्न हो जाना चाहिये।

भगवान्‌से किसी प्रकारकी भी सांसारिक वस्तुका माँगना सकाम ही है। वह चाहे किसीके लिये भी क्यों न हो; क्योंकि भगवान् अन्तर्यामी हैं। वे जो कुछ करते हैं, उसीमें साधकका परम हित भरा हुआ है। यह पूर्ण विश्वास रखनेवाला साधक किसी प्रकारकी माँग भगवान्‌के सामने कैसे उपस्थित कर सकता है? भगवान्‌पर निर्भर रहनेवाले भक्तका सब प्रकारका ऋण समाप्त हो जाता है। उसके पितर तो कृतार्थ हो ही जाते हैं, फिर उनको वंशपरम्पराकी क्या जरूरत है?

रही स्त्रीके आग्रहकी बात, तो वह यदि मोहवश आग्रह करती हो, तो उसका कोई महत्त्व नहीं है। अत: भगवान्‌के गुण-प्रभावको जाननेवाले निष्कामी भक्तके द्वारा माँगना नहीं बनता; अर्थार्थी भक्त यदि माँगे तो कोई दोषकी बात नहीं है। दूसरोंसे माँगनेकी अपेक्षा भगवान्‌से विश्वासपूर्वक माँगना अच्छा है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ८।३६ बजेतक	मंगल	श्रवण दिनमें ८।१६ बजेतक	४ अगस्त	**कुम्भराशि** रात्रिमें ८।५२ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ८।५२ बजे।
द्वितीया ,, ९।२४ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, ९।२९ बजेतक	५ ,,	**अशून्य शयन-व्रत।**
तृतीया ,, १०।३८ बजेतक	गुरु	शतभिषा ,, ११।९ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।१ बजेसे रात्रिमें १०।३८ बजेतक, **कजली (कजरी) तीज।**
चतुर्थी ,, १२।१७ बजेतक	शुक्र	पू०भा० ,, १।१६ बजेतक	७ ,,	**मीनराशि** प्रात: ६।४४ बजेसे, **संकष्टी (बहुला) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।१३ बजे।
पंचमी ,, २।११ बजेतक	शनि	उ०भा० ,, ३।३९ बजेतक	८ ,,	**रक्षापंचमी, मूल** दिनमें ३।३९ बजेसे।
षष्ठी रात्रिशेष ४।१४ बजेतक	रवि	रेवती सायं ६।१६ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४।१४ बजेसे, **मेषराशि** सायं ६।१६ बजेसे, **पंचक समाप्त** सायं ६।१६ बजे, **हलषष्टी (ललहीछठ), श्रीचन्द्रषष्ठी, चन्द्रोदय** रात्रिमें १०।१४ बजे।
सप्तमी अहोरात्र	सोम	अश्वनी रात्रिमें ८।५१ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** सायं ५।१४ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ८।५१ बजे।
सप्तमी प्रात: ६।१४ बजेतक	मंगल	भरणी ,, ११।१९ बजेतक	११ ,,	**श्रीकृष्णजन्माष्टमी-व्रत।**
अष्टमी दिनमें ८।१ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, १।३० बजेतक	१२ ,,	**वृषराशि** प्रात: ५।५२ बजेसे, **उदयव्यापिनी अष्टमी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्मव्रत, गोकुलाष्टमी।**
नवमी ,, ९।२७ बजेतक	गुरु	रोहिणी रात्रिमें ३।१५ बजेतक	१३ ,,	**उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्मव्रत, भद्रा** रात्रिमें ९।५७ बजेसे।
दशमी ,, १०।२७ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा रात्रिशेष ४।३४ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।२७ बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें ३।५५ बजेसे।
एकादशी ,, १०।५८ बजेतक	शनि	आर्द्रा रात्रिशेष ५।२१ बजेतक	१५ ,,	**स्वतन्त्रता-दिवस, जया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, १०।५७ बजेतक	रवि	पुनर्वसु अहोरात्र	१६ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें ११।३५ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १०।२७ बजेतक	सोम	पुनर्वसु प्रात: ५।४० बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।२७ बजेसे रात्रिमें ९।५७ बजेतक, **मूल** रात्रिशेष ५।२९ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ९।२७ बजेतक	मंगल	आश्लेषा रात्रिशेष ४।५२ बजेतक	१८ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें ८।४ बजेसे, **श्राद्धादिकी अमावस्या, कुशोत्पाटिनी अमावस्या।**
अमावस्या ,, ८।३ बजेतक	बुध	मघा रात्रिमें ३।५७ बजेतक	१९ ,,	**अमावस्या, मूल** रात्रिमें ३।५७ बजेतक।

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रात: ६।१८ बजेतक	गुरु	पू०फा० रात्रिमें २।४२ बजेतक	२० अगस्त	× × × ×
तृतीया रात्रिमें १।५८ बजेतक	शुक्र	उ०फा० ,, १।१३ बजेतक	२१ ,,	**कन्याराशि** दिनमें ८।१९ बजेसे, **हरितालिका (तीज)-व्रत।**
चतुर्थी ,, ११।३४ बजेतक	शनि	हस्त ,, ११।३ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।४७ बजेसे रात्रिमें ११।३४ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध।**
पंचमी ,, ९।६ बजेतक	रवि	चित्रा ,, ९।५७ बजेतक	२३ ,,	**तुलाराशि** दिनमें १०।४७ बजेसे, **ऋषिपंचमी।**
षष्ठी सायं ६।४० बजेतक	सोम	स्वाती ,, ८।१८ बजेतक	२४ ,,	**लोलार्कषष्ठीव्रत।**
सप्तमी दिनमें ४।२१ बजेतक	मंगल	विशाखा ,, ६।४६ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें ४।२१ बजेसे रात्रिमें ३।१६ बजेतक, **वृश्चिकराशि** दिनमें १।९ बजेसे।
अष्टमी ,, २।१२ बजेतक	बुध	अनुराधा सायं ५।२५ बजेतक	२६ ,,	**श्रीराधाष्टमीव्रत, मूल** सायं ५।२५ बजेसे।
नवमी ,, १२।१६ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा दिनमें ४।१९ बजेतक	२७ ,,	**धनुराशि** दिनमें ४।१९ बजेसे, **महानन्दा नवमीव्रत।**
दशमी ,, १०।४२ बजेतक	शुक्र	मूल ,, ३।३५ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।६ बजेसे, **मूल** दिनमें ३।३५ बजेतक।
एकादशी ,, ९।३१ बजेतक	शनि	पू०षा० ,, ३।१२ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।३१ बजेतक, **पद्मा एकादशीव्रत (सबका), मकरराशि** रात्रिमें ९।१३ बजेसे, **श्रीवामनद्वादशीव्रत।**
द्वादशी ,, ८।४६ बजेतक	रवि	उ०षा० ,, ३।१७ बजेतक	३० ,,	**प्रदोषव्रत, महारविवारव्रत।**
त्रयोदशी ,, ८।३० बजेतक	सोम	श्रवण ,, ३।५२ बजेतक	३१ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिशेष ४।२५ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिशेष ४।२५ बजे।
चतुर्दशी ,, ८।४६ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा सायं ४।५८ बजेतक	१ सितम्बर	**भद्रा** दिनमें ८।४६ बजेसे रात्रिमें ९।९ बजेतक।
पूर्णिमा ,, ९।३४ बजेतक	बुध	शतभिषा ,, ६।२२ बजेतक	२ ,,	**पूर्णिमा, महालयारम्भ, प्रतिपदाश्राद्ध।**

कृपानुभूति

हमारी नैया पार लगी

बात सन् १९६८ ई० की है, जब मैं सत्रह सालका था। मेरे जीजाजीकी कपड़ेकी दूकान भद्रावती (कर्नाटक)-में थी और मैं वहीं रहता था। मैसूरका दशहरा पूरे भारतमें प्रसिद्ध है, अत: दशहरेकी छुट्टियोंमें मैं और मेरे आठ मित्र, जो आयुमें प्राय: मेरे समवयस्क ही थे, मैसूर दशहरा देखनेको गये। तत्पश्चात् वहाँसे एक टूरिस्ट बससे हम सब ऊटी घूमने चले गये। पूरे दिन घूमनेके पश्चात् हम लोग शामके समय एक झीलपर गये। वहाँ झीलमें नौका-विहार करनेका सभीका मन हो गया। वहाँ बिना नाविकके भी नाव किरायेपर मिलती थी। हमसब बिना विचार किये नौका किरायेपर लेकर चल पड़े। सिनेमामें देखते थे कि नौकाको कैसे चलाते हैं। सबमें जोश और विश्वास था कि नौका चला लेंगे। हमलोगोंकी नासमझीसे नौका २००-२५० फीट दूरीतक चली गयी, बादमें गोल-गोल घूमने लगी। वहाँ पानी भी गहरा था। सभीने कोशिश की, मगर सब व्यर्थ! अँधेरा हो रहा था, किनारेपर बसवाला जल्दी लौट आनेको चिल्ला रहा था और हम सभी 'बचाओ-बचाओ'की पुकार लगा रहे थे। भाषाकी दुविधासे किनारेवाले हिन्दी नहीं समझ रहे थे, अत: कोई हमारी सहायताके लिये भी नहीं आ रहा था। अँधेरा गहराता जा रहा था। सारी कोशिशोंके बाद एक भी आशाकी किरण नजर नहीं आ रही थी। सब तरफसे हारकर मैंने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया। ***दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥*** बार-बार यही चौपाई दुहराता रहा। मेरे पिताजी मुझे पाँच सालकी उम्रसे ही श्रीरामचरितमानस पढ़ाते रहे हैं। हर दिन दोपहर और रात्रिमें पाठ होता था। उन संस्कारोंसे मैं भी रामजीके प्रति स्वामी और सेवकका नाता मानता हूँ। वे मेरे आराध्य हैं। अब उस प्राणसंकटकी घड़ीमें रामजीके सिवाय हमें कौन बचानेवाला था!

तभी हमने देखा कि नावमें एक और युवक साँवला-सा हृष्ट-पुष्ट बैठा हुआ है। हम आश्चर्य करने लगे कि नाव हमने अपने लोगोंके लिये ली थी, यह साँवला किशोर कहाँ से आ गया? मगर उसने और सोचनेका समय ही नहीं दिया और हमसे पूछा कि क्या आपलोगोंको नाव चलानी नहीं आती? हमने इस विषयमें अपनी असमर्थता बतायी, तभी वह अपने शर्ट-पैंट उतारकर झीलके पानीमें जो बहुत ही ठंडा था, कूद पड़ा और एक हाथसे नाव पकड़ ली, फिर तैरकर नाव किनारेपर ले आया। हम सभीके चेहरे खुशीसे खिल उठे। नावको वापस सौंपा और उस साँवले किशोरको धन्यवाद देनेके लिये मुड़े, वापस नौकाकी जगहपर आये, तब वहाँ वे नहीं मिले। मात्र दो मिनटके अन्तरालमें वे कहाँ चले गये! भीगा शरीर था, कपड़े बदलने—पैंट-शर्ट पहननेमें समय लगता। इधर-उधर देखा मगर वे नहीं मिले।

अब हमारे दिमागमें आया कि श्यामल किशोरके रूपमें हमारे इष्टदेव ही आये थे। संसार-सागरसे पार उतारनेवाले वे प्रभु ही हमें झीलमें डूबनेसे बचाने और हमारी नैया पार लगाने आये थे। जानेके समय हम नौ ही थे। उनको नहीं देखा! मुसीबत पड़नेपर वे दिखे और हमारा उद्धार किया आज भी भगवान्‌की उस कृपाको यादकर हम सभी रोमांचित हो उठते हैं।—**मदनलाल कोठारी**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

एक भारतीय भिखारीका आदर्श चरित्र

आजसे लगभग ६० वर्ष पहलेकी घटना है, एक धनी मारवाड़ी दम्पती हरिद्वारसे केदार-बदरीधाम जा रहे थे। डेढ़ घण्टेकी पहाड़ी यात्राके बाद उन्हें प्यास लगी और वे निकटके जलसत्रके पास गये। वहाँ हाथ-पैर धोने तथा पानी पीनेकी व्यवस्था थी। वहाँ वे दोनों हाथ-मुँह धोकर फिर आगे चल दिये। दो घण्टेतक चलनेके बाद उस महिलाको स्मरण हुआ कि भूलसे उसने हीरेकी अपनी अँगूठी जलसत्रपर छोड़ दी है। तुरंत वे दोनों लौटकर वहाँ गये। उनके आनन्द और आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि एक लम्बा भिखारी चिथड़े पहने था, और एक तागेसे उस अँगूठीको अपनी बाँहमें बाँधकर अपनी बाँह ऊपर करके चिल्ला रहा था—'किसकी अँगूठी है? किसकी अँगूठी है?' जब दम्पती उस भिक्षुकके पास पहुँचे और बोले कि 'अँगूठी मेरी है' तो भिखारीने तुरंत उस अँगूठीको उन्हें लौटा दिया और कहा—'तुम बड़े बदमाश हो! जबसे तुम्हारी अँगूठी मिली, तबसे हमारा खाना-पीना कुछ नहीं हुआ। मैं तो लगातार इसी तरह चिल्लाता रहा।'

मारवाड़ी महोदय अपनी अँगूठी पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपना तोड़ा निकाला और वे भिक्षुकको चालीस रुपये पुरस्कार देने लगे। उस जमानेमें चालीस रुपयेमें एक तोला सोना मिल जाता था। परंतु पुरस्कारकी बात सुनते ही भिखारी क्रोधित होकर चिल्लाया—'रुपये! किसलिये, क्या मैं चोर हूँ, यह तुम्हारी अँगूठी है और मैंने इसे तुम्हें दे दिया। उसके लिये मैं रुपये क्यों लूँ?' ऐसा कहकर वह चला गया। धनी सौदागर आश्चर्यचकित हो वहाँ खड़ा रहा। यह है, एक भारतीय भिखारीका आदर्श चरित्र।—**शिशिर कुमार सेन**

(२)

खुदा आप-जैसा ही कोई होगा

घटना सन् २००८ ई० की है। उस समय मैं एक व्यवसायके कारण चेन्नईके एक प्रतिष्ठानसे जुड़ा हुआ था। कुछ आपसी विचार-विमर्शके लिये मुझे प्रतिष्ठानसे बार-बार बुलावा आ रहा था, जाना भी जरूरी था। किंतु इन्हीं दिनों एक दुर्घटनाके फलस्वरूप मेरा एक पैर टूट गया था। बिना घोड़ी (एक लकड़ीका उपकरण, जिसे बगलमें रखकर चला जाता है)-के मैं चल नहीं सकता था और जाना भी जरूरी था। सो मैंने एक टैक्सी कर ली और सुबह ७ बजे मैं पत्नी और पिताके साथ चेन्नईके लिये रवाना हो गया। हम यथा समय चेन्नई प्रतिष्ठानमें पहुँच गये। वहाँ सभी अधिकारी और बड़े साहब भी मिल गये। सारा काम १-२ घण्टेमें पूरा हो गया। टैक्सी साथ थी ही, सो वहाँके प्रख्यात शिव मन्दिरके दर्शन किये और करीब ३ बजे हम बेंगलूरुके लिये रवाना हो गये। रास्तेमें वेल्लोरमें भगवती महालक्ष्मीका स्वर्ण-मन्दिर देखनेहेतु चले गये। वहाँ दर्शनार्थियोंकी भारी भीड़ थी। मन्दिर परिसर भी बहुत विशाल था। जानकारी करनेसे पता चला कि श्यामल किशोरके रूपमें हमारे इष्टदेव ही आये थे। संसार-सागरसे पार उतारनेवाले वे प्रभु ही हमें झीलमें डूबनेसे बचाने और हमारी नैया पार लगाने आये थे। स्वर्ण-मन्दिर १५ टन सोनेसे बना है। मन्दिरकी विशालता अपना परिचय स्वयं दे रही थी, महालक्ष्मीकी मूर्ति अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहारी थी। मन्दिर देखकर हम ७.३० बजे बेंगलूरुके लिये रवाना हो गये। अनुमानके अनुसार लगभग १२ बजे बेंगलूरु पहुँचना था। किंतु हमारा टैक्सी ड्राइवर लोभी प्रवृत्तिका होनेकी वजहसे सेट किये पेट्रोल पंपपर डीजल बेच रहा था। यद्यपि रास्ता साफ था। किंतु जब बेंगलूरु ३० किलोमीटर रह गया, तब अचानक गाड़ीके नीचे भागमें टक्कर लगी और डीजलकी

टंकी फूट गयी, सारा डीजल बह गया, गाड़ी खड़ी हो गयी। इससे हम भी चिन्तामें पड़ गये कि अब क्या होगा! तब ड्राइवर बोला—'साहब! मुझे पाँच सौ रुपये दे दो, मैं सुधरवानेकी व्यवस्था करता हूँ'। कोई अन्य उपाय न देखकर मैंने उसे पाँच सौ रुपये दे दिये, वह रुपये लेकर जो गया, फिर आया ही नहीं। अब हम घबरा गये, रात गहराती जा रही थी, अँधेरा बढ़ रहा था। यद्यपि गाड़ी मुख्य सड़कपर ही थी और बगलसे कई बसें, कारें, टैक्सियाँ आ-जा रही थीं। किंतु कोई भी रुकनेको तैयार नहीं। ऐसी हालतमें सिवाय भगवान्‌के और कौन सहाय हो सकता था; सो ***'दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी'*** का जाप करने लगे। इधर मेरे पिताजी घोड़ी बगलमें लगाकर सड़कपर खड़े हो गये कि कोई तो रुके। किंतु कोई नहीं रुका। तभी एक अनहोनी-सी घटना हुई, अचानक एक टैक्सी हमसे करीब पन्द्रह-बीस फुट दूर जाकर खड़ी हुई। तब पिताजी उसके पास दौड़े-दौड़े गये। उसमें एक सज्जन बैठे थे। उन्होंने पूछा 'क्या बात है?' तब पिताजीने सारे हालात बयान किये। तब उन्होंने पूछा कि 'कितने जन हो?' पिताजीने कहा कि 'मैं, मेरा बेटा एवं बहू—हम तीन जन हैं।' तो उन्होंने तत्काल आनेको कहा। हम भी जल्दी-जल्दी उनकी टैक्सीमें पीछे बैठ गये और टैक्सी चल पड़ी। थोड़ी देर बाद उन्होंने बताया कि 'यह जगह अत्यन्त खतरनाक एवं खराब है। यहाँ लूट-खसोट, हत्या आदिके मामले होते ही रहते हैं, इसलिये यहाँ कोई रुकता नहीं। मैंने भी गाड़ी बीस फुट दूर इसीलिये खड़ी की थी। आपके साथ कोई दुर्घटना नहीं हुई, ये बड़े भाग्यकी बात है।'

बेंगलूरु नजदीक आनेपर हमने उनसे कहा कि 'आप हमें यहीं उतार दीजिये, अब हम चले जायँगे'। किंतु उन्होंने इनकार कर दिया और कहा मैं आपको आपके घर छोड़कर ही जाऊँगा और हमें उन्होंने हमारे घर उल्सूर ही छोड़ा। तब पिताजीने उनको धन्यवाद देते हुए नाम पूछा। तो उन्होंने जो नाम बताया, उससे पता चला कि वे सज्जन एक मुसलिम थे। तब पिताजीने अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक कहा कि 'हमने खुदाको तो नहीं देखा, पर खुदा आप-जैसा ही कोई होगा।'—**विनोद पुरोहित**

(३)

श्वेतकुष्ठनाशक गंगाजल

श्वेतकुष्ठ एक त्वचा रोग है, जो आसानीसे नहीं जाता। इस सम्बन्धमें आयुर्वेदका मत है कि खदिरारिष्टके साथ जो नियमित गंगाजलका कुशल चिकित्सक सेवन करवाता है। वो इस हठी रोगको नष्ट करनेमें समर्थ होता है।

खदिरारिष्ट-चिकित्सा—*'खदिर भुः कुष्ठघ्ना-नाम्'* अर्थात् खदिर कुष्ठघ्न है। खदिरारिष्ट कुष्ठादि चर्मरोगोंके लिये अद्‌भुत औषधि है। सुपरीक्षित भी है। मात्रा एवं अनुपान—डेढ़से ढाई तोला बराबर जल मिलाकर भोजनान्तर दें। प्रातः स्नान करनेके पश्चात् एक गिलास गंगाजल और सायंकाल एक गिलास गंगाजल लें। इस चिकित्सा-विधानसे कुष्ठ समूल नष्ट हो जाता है।

गंगाजल-चिकित्सा—दो तोला नीमकी ताजी छालको कूटकर पावभर जल (गंगाजल)-में डालकर मन्द आँचपर पकायें, एक छटाँक जल शेष रह जाय तो छानकर पी लें। इसी प्रकार सायंकाल भी करें। दीर्घकालतक इसका सेवन करें। सेवनकालमें नमक, लाल मिर्च, लहसुन, प्याज आदि उष्ण पदार्थोंका परहेज करें। यह सिद्धयोग बहुत बारका अनुभूत है। आशातीत लाभ होता है तथा कुष्ठ समूल नष्ट हो जाता है।

आरोग्यवर्धिनी वटी और गंगाजल—वैद्य लोग आरोग्यवर्धिनी वटी १-२ गोली प्रातः-सायं लेनेका योग बताते हैं। जहाँतक मेरे अनुभवमें आया है, गंगाजलके साथ यह वटी ली जाय तो २०० फीसदी लाभकर शरीरको निरोगी बनाती है। यह अनूठा चमत्कार मैंने स्वयं देखा है।

गंगाजलका चमत्कारी प्रभाव—बाबची इस हठी रोगकी प्रसिद्ध दवा है। मेरे पूज्य गुरुने जो चिकित्सा-विधान बतलाया है, उसे लोकहितके लिये यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। उन्होंने अपने चिकित्सा-विधानमें बताया है कि पहले दिन बाबचीका एक दाना दूसरे दिन दो दाना एक गिलास गंगाजलसे लें अर्थात्

१-१ दाना प्रातः-सायं लें। ऐसे १०० दिनतक लें। पुनः वापस लौटकर १ दानेपर ही आ जायँ। इस प्रकार नियमबद्ध चिकित्सा करनेसे यह भयंकर हठी रोग समूल नष्ट हो जाता है।—**शंकरलाल गौड़**

(४)

भगवान्‌की अन्तर्वाणी

घटना आजसे लगभग साठ वर्ष पहलेकी है। उस समय मैं केन्द्रीय सरकारके एक कार्यालयमें सहायक क्लर्क था। एक दिन अकस्मात् एक पूर्वपरिचित ठेकेदार मेरे पास आये और मुझे सात रुपये देने लगे। मेरे पूछनेपर उन्होंने उत्तर दिया कि वे यह भेंट मुझे मिठाईके लिये दे रहे थे; क्योंकि उनके कामका एक बिल मेरे द्वारा एकाउन्टेन्टतक पहुँच गया था। उसी सहायताके उपलक्षमें वे सात रुपये मुझे भेंट देनेके लिये मेरे पास आये थे। मैंने उनसे कहा कि 'यह तो मेरा कर्तव्य था, आपको धन्यवाद; मैं रुपये लेनेका अधिकारी न होते हुए भी, रुपये स्वीकार न कर सकनेके लिये क्षमा चाहता हूँ।' परंतु वे नहीं माने और हठ करने लगे। इसी समय मेरे सहयोगी क्लर्क भी वहाँ आ गये, जो आयुमें मेरे पिताजीसे भी बड़े थे और उनका मैं हृदयसे बड़ा आदर करता था। उनके पूछनेपर मैंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर मुझे डाँटकर कहा कि 'तुम मेरे कहनेसे रुपये ले लो, मैंने भी तो ले लिये हैं; तुम व्यर्थ हठ करते हो। इनको लेनेमें कोई पाप नहीं है; क्योंकि ये तुमने पहलेसे तो तय किये नहीं थे। अतः इन्हें ले ही लो।' उनका कहा टालना मैंने उचित नहीं समझा और रुपये ले लिये; परंतु मेरी अन्तरात्मा मुझे फटकार रही थी कि यह तूने अच्छा नहीं किया।

संयोगसे दो ही दिन बाद 'शरत्पूर्णिमा'के अवसरपर मुझे सपरिवार गंगाजी जाना पड़ा। वहाँ पहुँचनेपर प्रथम स्नानार्थ मैं अपने लघु भ्राताको साथ लेकर गंगातटपर पहुँचा तो देखा, जलका प्रवाह तेज था तथा जल भी गहरा था। मुझे अकेले स्नान करनेमें भय प्रतीत हुआ; अतः मैंने अपने छोटे भाईसे कहा कि 'तुम मेरा एक हाथ पकड़ लो और मैं गोते लगाऊँ।' साबुन लगाकर स्नान करनेकी मेरी सदैवसे ही आदत है, अतः मैंने सारे शरीरमें साबुन लगाया और अपना एक हाथ छोटे भाईके हाथमें पकड़ाकर गोते लगाने लगा। दुर्भाग्यसे मेरा हाथ मेरे भाईके हाथमेंसे फिसल गया, क्योंकि उसमें साबुन लगा था; और साथ ही मेरी अँगुलीमें-से चार मासे सोनेकी अँगूठी निकलकर गंगाजीकी भेंट चढ़ गयी। मैं चिन्तातुर हो उठा और शर्मके मारे काँपने लगा। तुरंत ही भाईने जाकर पिताजीसे कहा और वे आ गये। उन्होंने आते ही कहा—मैंने पहले ही मना किया था कि गंगाजी या अन्य पवित्र नदियोंमें साबुन लगाकर नहीं नहाना चाहिये; परंतु तुम नहीं माने और अँगूठी गवाँ बैठे। मैंने उनसे प्रार्थना की कि 'आप क्रोध न करें; मुझे पूर्ण विश्वास है कि अँगूठी मिलकर रहेगी। यदि आप जानते हों तो किसी गोताखोरको बुला दीजिये।' पिताजी तुरंत घटवालियेके पास गये और उससे कहा कि किसी गोताखोरको बुला दो, अँगूठी मिलनेपर हम प्रसन्न कर देंगे। गोताखोर आया और उसने वह स्थान बतलानेको कहा, जहाँपर मैं स्नान कर रहा था; मैंने वह स्थान बता दिया और उसने लगभग डेढ़ घंटेके परिश्रमके बाद वह अँगूठी ढूँढ़ निकाली। उसने दो रुपये माँगे, जो कि उसे दे दिये गये; और तुरन्त ही पाँच रुपयेका प्रसाद, जो मैंने अँगूठी खोजते समय मनमें धारणा की थी, बाँट दिया।

उसी समय मेरे भीतर अन्तर्वाणी हुई कि 'ये सात रुपये जिस प्रकार आये, उसी प्रकार चले गये, उनका लोभ मत कर।' मैंने भगवान्‌का कोटिशः धन्यवाद किया कि उन्होंने मेरी आँखें खोल दीं और मुझे जीवनमें कुपथके गर्तकी ओर अग्रसर होनेसे सदैवके लिये बचा दिया।

यह मेरे जीवनका प्रथम तथा अन्तिम अवसर था, जब मैंने अपनी अन्तरात्माकी आवाज दबाकर इस प्रकारकी भेंट स्वीकार की हो।

—**गोकलचन्द गुप्त**

मनन करने योग्य

करत-करत अभ्यासके जड़मति होत सुजान

बालक वरदराजका नाम तो कुछ और था; परंतु मन्दबुद्धि होनेके कारण इनके सहपाठी इन्हें बरधराज (बैलोंका राजा) कहा करते थे। इनकी स्मरणशक्ति इतनी दुर्बल थी कि जितने दिनोंमें एक बड़े घड़ेभर सत्तू खाकर ये समाप्त कर पाते थे, उतने दिनोंमें केवल एक सूत्र इनका कण्ठस्थ होता था। जब ये पाँच वर्षके थे, तभी पढ़नेके लिये गुरुजीके पास आये थे। दस वर्ष बीत जानेपर भी जब ये मूर्ख ही बने रहे, तब अन्तमें एक दिन गुरुजीने निराश होकर कहा—'बेटा वरदराज! मैंने पूरा प्रयत्न कर लिया; परंतु तुम्हारे भाग्यमें विद्या नहीं जान पड़ती। तुम पढ़ाई छोड़कर घर जाओ और कोई दूसरा काम करो।'

ब्राह्मणके बालकको विद्या नहीं आयेगी, यह बात उन दिनों साधारण नहीं थी। यह तो ब्राह्मणत्वसे गिर जाने-जैसी बात थी। गुरुदेवकी बातसे वरदराजको इतना दुःख हुआ कि उन्होंने विद्याहीन जीवनसे मर जाना श्रेष्ठ समझा। कुएँमें कूदकर प्राण-त्याग करनेके विचारसे वे एक कुएँके पास गये। उन्होंने देखा कि कुएँके ऊपरका जो पत्थर है, उसपर जल खींचनेकी रस्सीकी रगड़के चिह्न बन गये हैं। वरदराजने सोचा—'जब इतने कठोर पत्थरपर कोमल रस्सीके बार-बार रगड़नेसे चिह्न बन जाता है, तब परिश्रम करनेसे क्या मुझे विद्या नहीं आयेगी?' वे आत्महत्या करनेका विचार छोड़कर गुरुदेवके पास लौट आये। कुछ दिन और अपने पास रखकर शिक्षा देनेके लिये गुरुदेवसे उन्होंने प्रार्थना की।

वरदराजने अब मन लगाकर पढ़ना प्रारम्भ किया। उनकी लगन इतनी तीव्र थी कि अपने शरीरतकका भी उन्हें ध्यान नहीं रहा। सायंकाल जब वे भोजन करने बैठे, तब भोजन करते समय भी उनकी दृष्टि व्याकरणके पन्नेपर ही थी और वे उसीको स्मरण करनेका प्रयत्न कर रहे थे। उनका हाथ थालीके बदले पास पड़ी राखपर पड़ गया और उसी राखको भोजन समझकर वे उठा-उठाकर खाने लगे। पढ़नेमें उनका इतना ध्यान था कि मुखमें भोजन जा रहा है या भस्म, इसका उन्हें कुछ पता ही नहीं लगा।

जब कोई किसी भी काममें पूरी एकाग्रतासे, सच्चे हृदयसे लग जाता है, तब उसके देवता उसपर अवश्य प्रसन्न हो जाते हैं। उस कार्यमें अवश्य उसे सफलता मिल जाती है। वरदराजकी पढ़नेमें इतनी एकाग्रता देखकर विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती प्रसन्न हो

गयीं। उन्होंने प्रकट होकर दर्शन दिया। उनके आशीर्वादसे वरदराज व्याकरण तथा सभी शास्त्रोंके महान् विद्वान् हो गये।

पाणिनीय व्याकरण पढ़नेमें बहुत श्रम होता है, वरदराजको इसका अनुभव था। उन्होंने आरम्भमें विद्यार्थियोंको व्याकरण पढ़नेमें सरलता हो, इस विचारसे 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' की रचना की। पाणिनीय व्याकरणका संक्षिप्त सारांश इस ग्रन्थमें है।

वरदराजकी घटनासे संस्कृतमें एक लोकोक्ति प्रचलित हो गयी, जिसकी हिन्दीमें भी पद्यके रूपमें बहुत प्रसिद्धि है। जीवनमें उन्नति चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके लिये यह लोकोक्ति स्मरण रखनेयोग्य है।

करत करत अभ्यासके जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सिलपर परत निसान॥

गीताप्रेससे प्रकाशित १७ महापुराण—अब उपलब्ध

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2223	श्रीशिवमहापुराण (प्रथम खण्ड) सटीक	३२५	1362	श्रीअग्निपुराण—सम्पूर्ण (श्लोकाङ्कसहित) केवल हिन्दी	२६०
2224	श्रीशिवमहापुराण (द्वितीय खण्ड) ,,	३२५	44	संक्षिप्त पद्मपुराण ,,	२८०
1897	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण [प्रतान्तरसे] (प्रथम खण्ड) ,,	२५०	1183	संक्षिप्त श्रीनारदपुराण ,,	२२०
1898	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण ,, (द्वितीय खण्ड) ,,	२५०	279	संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण ,,	४२५
26,27	श्रीमद्भागवतमहापुराण (दो खण्डोंमें) ,,	६००	1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण ,,	१५०
557	श्रीमत्स्यमहापुराण ,,	३००	539	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण ,,	१००
48	श्रीविष्णुपुराण ,,	१५०	1189	संक्षिप्त श्रीगरुडपुराण ,,	२००
1432	श्रीवामनपुराण ,,	१५०	1361	संक्षिप्त श्रीवराहपुराण ,,	१२०
1131	श्रीकूर्मपुराण ,,	१५०	631	संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण ,,	२५०
1985	श्रीलिङ्गमहापुराण ,,	२५०	584	संक्षिप्त श्रीभविष्यपुराण ,,	२००

श्रीकृष्णजन्माष्टमी एवं श्रीराधाष्टमीपर उपयोगी प्रमुख प्रकाशन

(श्रीकृष्णजन्माष्टमी ११ अगस्त मंगलवारको एवं श्रीराधाष्टमी २६ अगस्त बुधवारको है।)

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
571	श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन	२००	343	मधुर	३०	870	गोपाल [चित्रकथा]	१५
49	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	१००	526	महाभाव-कल्लोलिनी	१०	871	मोहन ,,	२०
50	पदरत्नाकर	११०	869	कन्हैया [चित्रकथा]	१५	872	श्रीकृष्ण ,,	१५

सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह (कोड 1594)

प्रस्तुत पुस्तकमें एक साथ श्रीगणपति, श्रीविष्णु, श्रीशिव, श्रीदुर्गा, श्रीसूर्य, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीलक्ष्मी-नृसिंह, श्रीगोपाल, श्रीराधाकृष्ण, श्रीहनुमान्, श्रीगायत्री, श्रीगङ्गा, श्रीयमुना, श्रीलक्ष्मी, श्रीअन्नपूर्णा, श्रीसीता, श्रीराधिका, श्रीललिता, श्रीभवानी, श्रीदत्तात्रेय, श्रीवक्रतुण्ड-महागणपति—२२ देवी-देवताओंके सहस्रनामावलीसहित सहस्रनामस्तोत्र प्रकाशित किये गये हैं। परमात्मप्रभुकी प्रसन्नताके निमित्त पूजा-अर्चनाके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹ १३०

सहस्रनामस्तोत्र (नामावलीसहित) अलगसे पॉकेट साइजमें भी

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
1599	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1664	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1706	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	१०
1600	श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1665	श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1707	श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्	१०
1601	श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1704	श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1708	श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्	१०
1663	श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्	८	1705	श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	1709	श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम्	८

शतनामस्तोत्रसंग्रह (कोड 1850) पुस्तकाकार—प्रस्तुत पुस्तकमें गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, दुर्गा आदि विभिन्न देवों और देवियोंके शतनामस्तोत्रों एवं शतनामावलियोंको प्रकाशित किया गया है। भक्तगण इसके माध्यमसे उपासना एवं पूजा करके यथोचित लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मूल्य ₹ ३५

प्र० ति० 20-06-2020
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[२ सितम्बर बुधवारसे पितृपक्ष (महालया) आरम्भ हो रहा है]

नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश, सजिल्द (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रातःकालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धति, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹ ७० (गुजराती, तेलुगु एवं नेपाली भाषामें भी उपलब्ध)।

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹ १४५

जीवच्छ्राद्धपद्धति (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹ ७०

गया-श्राद्ध-पद्धति (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹ ३५

गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹ ४०

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹ २०

सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण बलिवैश्वदेव-विधि (कोड 210) पुस्तकाकार—नित्य सन्ध्या-उपासना एवं तर्पण बलिवैश्वदेवविधिका मन्त्रानुवादके साथ सुन्दर प्रकाशन। मूल्य ₹ ८ [तेलुगुमें भी उपलब्ध]।

☛ booksales@gitapress.org
थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
☛ gitapress.org
सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये
गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
book.gitapress.org
gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ सकते हैं।